जैन भारती

जून 2013 • वर्ष 61 • अंक 6 • वार्षिक रु. 200.00

खोजने वालों को उजालों की कमी नहीं

With best compliments from :

SMT MACHINES

INFRASTRUCTURE

- In-House third party inspection facility.
- SMT has three manufacturing units.
- SMT has more than 150 Heavy and Precise machine out of which about 60 machines are imported from Europe, efforts to deliver the best and on time.
- All the designing is done on 3D Autodesk Inventor software's by our experienced engineers
- SMT has taken initiative to provide Operating and Instruction Manual with most of the machines integrated by Oracles ERP Software, dedicating ourselves to professionalism committed for the Best of the After Sale Services and lot more.

Turnkey Project Experts in Total Steel Making

Apart from regular products, we provides-Certified TMT Quenching Box, Automatic and Skid Type transfer cooling Beds, Twin Channels, Eden Borne Type Coiler, Flying & Dividing Shears, Cobble Shears, Section Straightening Machine, Repeaters Roller Conyeyors, Tilting & Y Table, Snap Shears etc.

SMT

SMT MACHINES (INDIA) LIMITED

An ISO 9001:2000 Co., An ISO 14001 : 2004 Co., An ISO 18001: 2007 Co.
D & B Ranked SE 2A Unit, Govt of India Recognized Export House
G.T.Road Near Industrial Focal Point, Mandi Gobindgarh - 147301,
INDIA, Mob : + 91-93577 55555
Tel : + 91- 1765 256337, 257742, Fax : 255199
e- mail : info@smtmachinesindia.org, info@smtsteelmills.com
Web : www.smtmachinesindia.org. www.smtsteelmills.com

Fine Strokes (09866291098)

जैन भारती

वर्ष 61 • जून, 2013 • अंक 6

सम्पादक
डॉ. शान्ता जैन

•

आवरण
गौरीशंकर

संपादकीय सम्पर्क सूत्र :
डॉ. शान्ता जैन,
जैन विश्व भारती
विश्वविद्यालय,
लाडनूं, 341306,
मो. 09413889617

प्रकाशकीय कार्यालय :
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी
महासभा, तेरापंथ भवन,
महावीर चौक, गंगाशहर,
बीकानेर 334401

प्रधान कार्यालय :
जैन श्वेताम्बर तेरापंथी
महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च
स्ट्रीट, कोलकाता 700001

सदस्यता शुल्क :
• वार्षिक 200/–
• त्रैवार्षिक 500/–
• दसवर्षीय 1500/– रुपए

अनुक्रम

1.	अध्यात्म की अनुभूतियां	–आचार्य तुलसी	4
2.	सम्पादकीय		5
3.	मन को साधो	–आचार्य महाश्रमण	7
4.	खोजने वालों को उजालों की कमी नहीं		10
5.	आत्मा के आस-पास	–आचार्य तुलसी	11
6.	तुलसी है अभिनव तीर्थधाम	–साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा	14
7.	तुलसी अष्टकम्	–आचार्य महाप्रज्ञ	15
8.	समाधान के दर्पण में देश की प्रमुख समस्याएं		17
9.	हर समस्या का समाधान संभव		23
10.	भ्रूण हत्या : एक प्रश्नचिह्न		24
11.	अश्लीलता की समस्या		25
12.	व्यवसाय जगत की बीमारी : मिलावट		27
13.	संस्कृति की अस्मिता पर प्रश्नचिह्न		28
14.	दूरदर्शन की संस्कृति		29
15.	चिंतन खान-पान की संस्कृति का		31
16.	सामाजिक परिवेश स्वस्थ बने		32
17.	जीवनशैली की विसंगतियां दूर हों		33
18.	समाधान मिलेगा प्रायोगिक धर्म से		35
19.	अपराध के प्रेरक तत्त्व		37
20.	संयम और सादगी लाएं जीवन में		38
21.	कौन देगा समाधान?		39
22.	असहिष्णुता की समस्या		41
23.	अंतिम दो प्रवचन बन गए इतिहास की अनमोल धरोहर		43
24.	आचार्य महाप्रज्ञ का गुरुदेव की सन्निधि में अंतिम प्रवचन		48
25.	लघुदण्डक का एक विमर्शनीय बोल	– प्रो. मुनि महेन्द्र कुमार	51
26.	तेरापंथ शासन का कार्यकारी हस्ताक्षर महासभा		54

अध्यात्म की अनुभूतियां

आचार्य तुलसी

- अध्यात्म का पाठ शैशव को सात्त्विक संस्कारों से संवारता है। यौवन को उद्धत नहीं होने देता और अनुभवप्रवण बुढ़ापे को भारभूत होने से बचाता है।
- अध्यात्म के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए सबसे पहला पड़ाव है—सम्यक्‌दर्शन। जब तक दृष्टिकोण सही नहीं होता, अध्यात्म की यात्रा आगे नहीं बढ़ सकती।
- अध्यात्म का प्रयोग करने वाले व्यक्ति की वृत्तियां शांत होती हैं। ऊर्जा विकसित होती है और कार्यक्षमता बढ़ती है। यह एक अनुभूत सत्य है।
- समस्या का स्थाई समाधान न हिंसा में है, न भौतिक समृद्धि में और न शस्त्र संपन्नता में है। वह निहित है—अध्यात्म में।
- जब तक मूर्च्छा का चक्रव्यूह नहीं टूटता तब तक हजार उपदेश सुनने और पढ़ने से भी अध्यात्म का अर्थ-बोध नहीं होता।
- बलात् दंड देना कानून को मान्य हो सकता है, पर अध्यात्म में हृदय परिवर्तन के सिद्धांत को ही मान्यता प्राप्त है।
- आध्यात्मिक विकास के बिना भौतिक विकास बिना अंक वाले शून्य के समान है। वह व्यक्ति को विलासिता की अंधी खोह में ढकेल देता है।
- अध्यात्म चेतना का जागरण हुए बिना समस्या समाधान के हजारों प्रयत्न हजारों वर्षों में भी सफल नहीं होंगे।
- अध्यात्म का स्वरूप शाश्वत है। उस पर न तो समय की धूल जम सकती है और न उसे परिस्थितियों की आंधी उड़ा सकती है।
- जो व्यक्ति दूसरों के अधिकारों को छीनकर, कुचलकर और शोषणपूर्वक अर्थ-संग्रह कर धनकुबेर बनने की लालसा रखता है वह अध्यात्म से बहुत दूर है।
- अध्यात्म से रोटी नहीं मिलती, पर जिस कारण से रोटी नहीं मिलती उस कारण का अर्थात् संग्रह का निराकरण अध्यात्म से ही हो सकता है।
- अध्यात्मशून्य विज्ञान जिस प्रकार संहार का वाहक बन जाता है, उसी प्रकार विज्ञानशून्य अध्यात्म भी अंध श्रद्धा बन जाता है।

—'एक बूंद : एक सागर' पुस्तक से

जिनका संवाद संदेश बन गया

आचार्यश्री तुलसी ने एक बार कहा था—'मैंने संकल्प किया है कि मैं जब तक रहूं, अंतिम श्वास तक काम करता रहूं। कितना किया, उसका लेखा-जोखा करना मेरा काम नहीं।' सचमुच! वह कर्मवीर कर्म करते-करते कृतकाम हो गया। उन्होंने अपना संकल्प पूरा कर दिया। उन्होंने क्या किया, कैसे किया, क्यों किया, किसके लिए किया—इन सारे प्रश्नों का उत्तर देना अब हम सबका दायित्व बन गया है।

पर हमारे सामने समस्या यह है कि हम कैसे मापें उस आकाश को, कैसे बांधे उस समंदर को, कैसे गिने बरसात की बूंदों को? तुलसी की अनुशासना की रचनात्मक उपलब्धियां उम्र के पैमानों से इतनी ज्यादा हैं कि उनके आकलन में गणित का हर फार्मूला छोटा पड़ जाता है।

तुलसी व्यक्ति नहीं, वे धर्म, दर्शन, कला, साहित्य और संस्कृति के प्रतिनिधि युगपुरुष थे। उनका संवाद, शैली, साहित्य, साधना, सोच, सपने और संकल्प सभी कुछ मानवीय मूल्यों के योगक्षेम से जुड़े थे।

उनकी अविभक्त संत-चेतना ने अपना परिचय स्वयं दिया कि 'मैं सबसे पहले मानव हूं,' इसलिए वे एक धर्म संप्रदाय के आचार्य होते हुए भी सूरज की धूप, वर्षा के पानी और वृक्ष की छांव ज्यों कभी बंटे नहीं। हवा बन सब तक पहुंचे, प्रकाश बन अंधेरों को थामा और विश्वास बन सबके आश्वास बन गए।

उन्होंने पुरुषार्थ से भाग्य रचा—अपना, संघ का, समाज का और उन सभी का जिनके भीतर थोड़ी भी आस्था और आत्मविश्वास है कि हमारा जीवन बदल सकता है।

उनकी मानवीय संवेदना ने पूरी मानवता को करुणा से भिगोया था यह कहकर कि 'मैं उस दिन की आशा लिए हूं जिस दिन किसी को फांसी तो क्या, जेल की सजा भी नहीं मिलेगी?' और इसलिए वे बुराइयों के विरुद्ध संघर्ष करते रहे आदमी को सही मायने में आदमी बनाने के लिए।

उनकी संतता और अनुशासन दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू थे। जो भी उनकी संतता की छांव में आता, विभाव स्वभाव में बदल जाता। मन सुख, शांति और समाधि से भर जाता। तर्क, जिज्ञासा, ऊहापोह, तनाव सभी विराम पा लेते। विवाद, विरोध और विद्रोह की उदण्डता झुक जाती। उस आभावलय का प्रभाव ही कुछ ऐसा था कि व्यक्ति भीतर से रू-बरू होने लगता। स्वयं की पहचान में उसे शब्द नहीं तलाशने पड़ते। एक नजर में ही आचार्यश्री तुलसी तोल लेते थे कि व्यक्ति कितना सही, कितना गलत है।

उम्र के जिस पड़ाव पर इंद्रियां श्लथ, कर्मजा शक्ति निस्तेज, स्मृति कमजोर और आकांक्षाएं ठंडी-सी पड़ जाती हैं वहां गुरुदेव तुलसी का मन अंतिम क्षण तक युवा-सा, तरोताजा, सक्रिय, आशावादी और पुरुषार्थी बना रहा।

उन्होंने हमें बहुत कुछ दिया। आज उनका संवाद हमारे लिए संदेश बन गया है और हर कर्म गीता का उपदेश। देखना अब यह है कि हम उनकी स्मृति को सिर्फ स्मारक बनाकर पूजते रहेंगे या उनके जलाए दीयों से रोशनी लेकर दीप बनकर जलेंगे।

जरूरत इस बात की भी है कि हम तुलसी को भौतिक चमत्कारों से तोलने का मन और माहौल न बनाएं। उनके जीवन का तो एक-एक कर्म स्वयं पूजा है, मंदिर और आरती है। कोई उन्हें जीकर देखे तो सही, आचरण स्वयं चमत्कार बन जाएगा।

सभी कहते हैं तुलसी अब नहीं रहे, मगर धर्म कहता है—आत्मा कभी मरती नहीं। इसलिए इस शाश्वत सत्य का विश्वास लिए हम सदियां जी लेंगे कि तुलसी अभी यहीं हैं—हमारे पास, हमारे साथ, हमारी हर सांस में, दिल की हर धड़कन में।

खलील जिब्रान ने महाप्रयाण करते समय जो पंक्तियां अपने अनुयायियों को संबोधित करके कही थीं, वे ही पंक्तियां गुरुदेवश्री तुलसी के संदर्भ में सही चरितार्थ होती हैं। शायद हम सबको 'अलविदा' कहते समय उनके मन में भी यही भाव रहे हों—

'तुम लोगों के साथ बिताए गए दिन बहुत कम थे और उससे भी कम थे वे शब्द जो मैंने तुमसे कहे, किंतु यदि मेरी आवाज तुम्हारे कानों में धुंधली पड़ने लगी और यदि मेरा प्रेम तुम्हारी स्मृतियों में लुप्त होने लगा तो मैं फिर आऊंगा। तब मैं इससे भी अधिक संपन्न हृदय से और परमात्मा के प्रति इससे भी अधिक समर्पित होंठों से प्रवचन करूंगा। भले ही मृत्यु मुझे छिपा ले और महत्तर मौन मुझे घेर ले, फिर भी मैं चेष्टा करूंगा कि मेरे विचारों को समझो। मेरी चेष्टा व्यर्थ नहीं जाएगी।'

—मुमुक्षु शांता

मन को साधो

आचार्य महाश्रमण

हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग है मन। मन के द्वारा हम विचार करते हैं, मन में स्मृति, कल्पना की जाती है, मन से हम कभी दुःखी बन जाते हैं कभी सुखी बन जाते हैं, मन कभी प्रफुलित हो जाता है तो कभी निराश हो जाता है। एक दिन में हमारे मन के अनेक रूप सामने आ जाते हैं? कोई लेखा-जोखा करने वाले हो तो अनेक रूपों का समाकलन किया जा सकता है। आयारो में ठीक कहा गया–अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे अर्थात् यह पुरुष अनेक चित्तवाला होता है। कभी कोई भाव उभरता है तो कभी कोई भाव प्रकट होता है। विभिन्न भाव आते रहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में मन के बारे में अर्जुन और श्रीकृष्ण के बीच सुंदर संवाद हुआ है। अर्जुन कहते हैं–

चञ्चलं हि मनः कृष्ण! प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

हे प्रभो! यह मन बड़ा चंचल है, बड़ा हठी है, बड़ा बलवान है और बड़ा मजबूत है। इसका निग्रह करना उतना ही मुश्किल है, जितना मुश्किल हवा को वश में करना होता है।

हवा को रोकना किसी के हाथ की बात नहीं है। हां, हवा को गुब्बारे में भरकर तो फिर भी कोई रोक सकता है, किंतु चलती हुई हवा को रोकना कोई आसान काम नहीं है। जैसे हवा को रोकना कठिन काम है, वैसे ही मन को रोकना भी कठिन काम है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन की बात सुनी। उन्हें लगा कि अर्जुन के द्वारा कही बात सही है, पर इसके मन में व्यर्थ निराशा नहीं आनी चाहिए। इससे आगे भी कुछ यथार्थ है, उसका भी साक्षात्कार इसे कराना चाहिए। श्रीकृष्ण ने अर्जुन की बात को मान्य करते हुए कहा–

असंशयं महाबाहो! मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय! वैराग्येण च गृह्यते।।

हे अर्जुन! निःसंदेह मन चंचल है। इसको वश में करना कठिन है, परंतु अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन को वश में किया जा सकता है।

मन की चंचलता का हम अनुभव कर सकते हैं। हम चलते हैं, चलते समय हमारे दिमाग में कितने विचार आते हैं? हम भोजन करते हैं। उस दौरान भी एक ओर तो हम कवल ले रहे हैं, दूसरी ओर हमारे दिमाग में विचार आते रहते हैं। हम रात को सोते हैं, उस समय भी मन में कोई विचार आ जाता है। विचारों का एक चक्र-सा चलता रहता है। एक के बाद एक विचार हमारे

मन में आते रहते हैं। कभी-कभी विचारों में कुछ शृंखलाबद्धता भी होती है। एक विचार से जुड़ा हुआ दूसरा विचार, तीसरा विचार क्रमशः आता रहता है। विचार के साथ अतीत की घटनाएं भी हमें याद आ जाती हैं। ज्यादातर निकट अतीत के विचार हमारे मन में आते हैं। कुछ समय पहले जो कुछ देखा, जो बात हुई, उससे जुड़े विचार हमारे दिमाग में आते-जाते हैं। खैर, अतीत के हों या निकट अतीत के हों या भविष्य के बारे में कल्पना हो, विचार हमारे मन में आते रहते हैं, यह एक सत्य है। हम जप आदि का प्रयोग करते हैं, उपासना करते हैं, तब भी हमारे मन में विचार आ जाते हैं। हमारा मन चंचल अवश्य है, किंतु मन की चंचलता को कम किया जा सकता है। मन को बड़ा बलवान कहा गया है। सचमुच! मन इतना बलवान है कि आदमी कमजोर हो जाता है। एक आदमी हर स्थिति में चट्टान की तरह मजबूत और निर्भय रहता है और एक आदमी थोड़ी-सी कठिनाई आते ही कमजोर हो जाता है। यह सब मन का खेल है।

ऐसा ही प्रसंग हमें उत्तराध्ययन सूत्र में उपलब्ध होता है। वहां कुमारश्रमण केशी और गणधर गौतम के बीच अनेक विषयों पर रोचक संवाद हुए हैं। कुमारश्रमण केशी ने कहा—

अयं साहिसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
जंसि गोयम! आरूढ़ो, कहं तेण न हीरसि?।।

यह साहसिक, भयंकर, दुष्ट अश्व दौड़ रहा है। गौतम! तुम उस पर चढ़े हुए हो। वह तुम्हें उन्मार्ग में कैसे नहीं ले जाता? तब गणधर गौतम ने कहा—

पधावंतं निगिण्हामि, सुयरस्सीसमाहियं।
न मे गच्छइ उम्मग्गं, मग्गं च पडिवज्जई।।

मैंने इसे श्रुत की लगाम से बांध लिया है। यह जब उन्मार्ग की ओर दौड़ता है, तब मैं इस पर रोक लगा देता हूं, इसलिए मेरा अश्व उन्मार्ग को नहीं जाता, मार्ग में ही चलता है।

यह अश्व और कोई नहीं, मन ही है। इस मन की लगाम व्यक्ति के हाथ में होती है तो वह उत्पथ में नहीं जा सकता। वह लगाम है ज्ञान की, श्रुत की। एक समाधान मिल गया कि श्रुत के द्वारा मन को नियंत्रित किया जा सकता है। अनेक लोग श्रुत की आराधना करते हैं। ऐसे पवित्र आध्यात्मिक ज्ञान का स्वाध्याय करने वाले और मनन करने वाले इस मन रूपी दुष्ट अश्व की लगाम अपने हाथ में ले लेते हैं। फिर यह दुष्ट अश्व कुलीन अश्व बन जाता है।

घोड़े कई तरह के होते हैं। कई उत्पथ की ओर ले जाने वाले हो सकते हैं तो कई सत्पथ की ओर ले जाने वाले भी होते हैं। घोड़े की सवारी करने वाले व्यक्ति पहले यह देखे कि घोड़ा कैसा है? यदि दुष्ट है तो उसको सहला करके आत्मीय बना लेना चाहिए ताकि फिर वह घोड़ा कभी गलत पथ में न ले जाए। घोड़े की लगाम भी व्यक्ति के हाथ में रहनी चाहिए। बिना लगाम का घोड़ा हो अथवा दुष्ट घोड़ा हो तो उसका क्या भरोसा वह कहां ले जाए? हमारा यह मन रूपी घोड़ा ज्ञान की लगाम से बंधा हुआ हो तो वह बड़ा उपयोगी बन जाता है और दूरी को कम करने वाला होता है। इस मन के द्वारा सुंदर चिंतन, सुंदर विचार किया जा सकता है। संस्कृत साहित्य में कहा गया—शिवसंकल्पमस्तु मे मनः अर्थात् मेरा मन पवित्र संकल्पों वाला, पवित्र विचारों वाला बने। वह पवित्र तब बन सकता है, जब मन रूपी घोड़े को ज्ञान रूपी लगाम से बांध लिया जाए और लगाम सवार के हाथ में रहे।

गीता में भी एक समस्या प्रस्तुत की गई और उत्तराध्ययन में भी एक समस्या प्रस्तुत की गई। समस्या प्रस्तुत करना आसान होता है, किंतु उसका समाधान देना कुछ कठिन होता है। यह बड़ा संतोष का विषय है कि दोनों में उसका समाधान भी होगा। आदमी यह सोचे कि किस समस्या का क्या समाधान हो सकता है? मन की जो समस्या है, वह एक-दो व्यक्तियों की नहीं, बड़ी व्यापक समस्या है। यह ऐसी समस्या है, जिसके साथ इतने घुलमिल गए हैं कि सामान्य

रूप में तो वह समस्या लगती ही नहीं है। हमारा चलना, खाना, पीना भी चलता है और साथ में मन का विचार भी चलता रहता है। दोनों साथ-साथ मानो मित्र की भांति चलते हैं। हमें समस्या का अनुभव तब होता है, जब मन में दुःख होता है, कष्ट होता है, हमारे मन के प्रतिकूल कोई स्थिति बन जाती है। मन की वह स्थिति हमारे लिए बड़ी अप्रिय होती है और उससे आदमी छुटकारा भी पाना चाहता है। यह समस्या केवल गृहस्थों की नहीं है, साधकों के सामने भी आ जाती है। उनका भी मन चंचल चलित हो जाता है। और तो क्या, मन इतना चलित हो जाता है कि साधक साधना के पथ को छोड़ने की बात भी सोच लेता है। मोहकर्म का ऐसा वेग आता है कि अनेक साधु साधना पथ से विचलित हो जाते हैं और साधना को छोड़कर गार्हस्थ्य में चले जाते हैं। यह स्थिति तब बनती है, जब मन कमजोर और विचलित हो जाता है।

मन की चंचलता का सर्जक है मोहकर्म। मोहकर्म के कारण चंचलता उत्पन्न होती है और संकल्प-विकल्प आते हैं। इसका समाधान है ज्ञान रूपी लगाम। ज्ञान के द्वारा आदमी को कोई उपाय मिल जाता है और वह परिपक्व साधना वाला बन जाता है, स्वीकृत साधना के प्रति पुष्ट आस्था वाला बन जाता है। अपेक्षा है कि साधक मन की लगाम को अपने हाथ में रखे। ❑

बदलती भाव धारा

राजर्षि ध्यान-साधना में खड़े थे। राजा श्रेणिक भगवान महावीर के दर्शनार्थ जा रहा था। राजर्षि को देखते ही मन में बड़ा भक्ति का भाव जगा। राजा श्रेणिक उनकी प्रशंसा करने लगा, तब एक दुर्मुख नामक दूत ने कहा–'यह तो मात्र ढोंग है। इसने बड़ी नासमझी का काम किया है? अपने छोटे-से बच्चे पर इतने बड़े राज्य का दायित्व सौंपकर स्वयं साधु बन गया। पीछे से शत्रु-सेना ने राज्य पर आक्रमण कर दिया। अब राज्य को लूट लिया जाएगा। उस बच्चे का रखवाला कौन होगा? इसकी पत्नी का क्या हाल होगा? जब ये बातें ध्यान में संलग्न राजर्षि के कानों में पड़ी, तब राजर्षि का ध्यान आत्मा, परमात्मा में न रहकर राज्य में चला गया। उधर जब राजा श्रेणिक भगवान महावीर के पास पहुंचा, दर्शन किए और निवेदन किया–'प्रभो! मैंने मार्ग में देखा कि राजर्षि प्रसन्नचंद्र, जो कभी राजा था, सुखों में रहने वाला था, वह आज कठोर साधना में संलग्न है। प्रभो! राजर्षि अभी आयुष्य का बंध करे तो उसकी अगली गति क्या होगी?

प्रभु महावीर–'यदि अभी मनुष्य का बंध करे तो वह नरक में जाएगा।

राजा श्रेणिक–'प्रभो! ऐसे तपस्वी संत भी नरक में जाएंगे तो हम जैसों को कौन-सा स्थान मिलेगा?

राजर्षि मन ही मन युद्ध करने लगा। शत्रु-सेना पर प्रहार करने के लिए मुकुट उतार कर फेंकना चाहा। जैसे ही हाथ सिर पर गया, तब भान हुआ–अरे! मैं तो साधु हूं। किसका राज्य? किसका बेटा? किसकी संपत्ति? मैं कहां चला गया? जो बहिर्मुखता थी, वह अंतर्मुखता में बदल गई। पुनः ध्यान-साधना में अवस्थित हो गए। विचारों में बदलाव आया। भावों की श्रेणी का आरोहण करते-करते भूमिका तक पहुंच गए, जहां से पुनः कभी पतन नहीं हो सकता। कुछ ही देर में घोषणा हो गई कि राजर्षि प्रसन्नचंद्र केवलज्ञानी हो गए। राजर्षि प्रसन्नचंद्र अपने स्थान से न हिले, न डुले, प्रारंभ से अंत तक वैसे ही खड़े रहे, किंतु मात्र भावों से वे कहां से कहां तक पहुंच गए? ❑

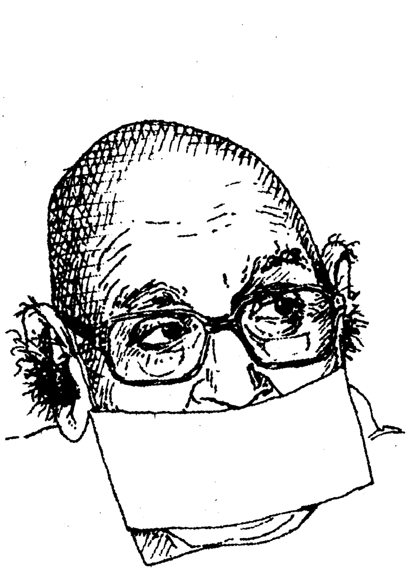

खोजने वालों को उजालों की कमी नहीं

यह वर्ष आचार्यश्री तुलसी की जन्म शताब्दी मनाने की तैयारी का समय है। इस तैयारी में हमें उन जीवन-मूल्यों को तलाश कर उन्हें जीने के लिए कृतसंकल्पित बनना है जिनके लिए वे जीवनभर हमें प्रतिदिन संबोध देते रहे।

आज का आदमी अनेक समस्याओं से घिरा खड़ा है। कभी शरीर बीमार तो कभी मन अशांत। कभी बिखरता परिवार तो कभी टूटते रिश्ते। कभी सामाजिक परंपराओं का दबाव तो कभी मान-प्रतिष्ठा का प्रश्न। कभी आर्थिक संकट तो कभी सीमा से ज्यादा दायित्व का बोझ। कभी भावात्मक असहिष्णुता तो कभी कषायजनित आवेश। साए की तरह बाहरी-भीतरी समस्याएं साथ-साथ चलती हैं और अपना प्रभाव दिखाती हैं।

ऐसी स्थिति में 'जैन भारती' का जून अंक जिसमें आचार्यश्री तुलसी का साहित्य, प्रवचन, संबोध जीवन से जुड़ी हर समस्या का समाधान लेकर सामने खड़े हैं इस विश्वास के साथ कि **अंधेरों की कोई उम्र नहीं होती और खोजने वालों को उजालों की कमी नहीं,** जरूरत सिर्फ कदम बढ़ाने की है। मन में संकल्प जगाने की है।

याद रखें, जीवन में कोई भी काम कठिन नहीं होता सिर्फ उसकी शुरुआत कठिन होती है। आइए, हमारे आस-पास फैलती समस्याओं की चादर को समेटना शुरू करें। धूप भले तेज हो, पर छतरी की थोड़ी-सी भी छांव हमें राहत देगी। सोच बदलें, सपनों को नए अर्थ दें, ताकि एक नई संस्कृति का जन्म हो सके। ❐

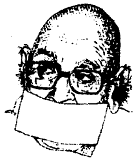

आत्मा के आस-पास

आचार्य तुलसी

महान्सृजन शिल्पी अध्यात्म प्रचेता आचार्यश्री तुलसी का एक विशिष्ट रचना ग्रंथ है आत्मा के आस-पास, जिसमें अर्हत् वाणी, अध्यात्म पदावली और प्रेक्षा संगान—रचनाएं एक साथ संयोजित हैं। **जैन भारती** के सुधी पाठकों के लिए आचार्यश्री तुलसी के जन्म शताब्दी वर्ष को लक्ष्य में रखकर आध्यात्मिक जीवन-विकास हेतु अध्यात्म पदावली शुरू की जा रही है।

आचार्यश्री ने यह रचना योगक्षेम वर्ष में बनाई थी। इसका प्रतिपाद्य विषय है कि व्यक्ति निश्चय और व्यवहार की समन्विति में जीना सीखे। शरीर को परिधि में और आत्मा को केंद्र में रखे। स्व-पर का भेद जान कर संस्कारों का परिष्कार करे। कर्म-मीमांसा को समझे, पापभीरु बनें। अपने प्रति जागरूक रहे। हर वक्त आत्मा के आस-पास रहे।

इस कृति को साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने संपादित कर पाठकों के लिए सहज बुद्धिगम्य बना दिया है।

धर्म का स्रोत

1. **मूल स्रोत है धर्म का, आत्मा की पहचान।**
एके साधे सब सधे, यही परम विज्ञान।।

धर्म का मूल स्रोत है अध्यात्म की पहचान। धर्म की उत्पत्ति आत्मा के बिना नहीं हो सकती, इस दृष्टि से उसका उद्‌गम आत्मा को माना गया है। जो आत्मा को अच्छी तरह जान लेता है, वह संसार के सब पदार्थों को जान लेता है। 'एके साधे सब सधे'—एक को साध लेने पर सब सध जाते हैं तथा 'जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ'—जो एक को जानता है, वह सबको जान लेता है, ये वाक्य उक्त मंतव्य को पुष्ट करने वाले हैं। निश्चय नय के अनुसार आत्मा ही सब कुछ है और वही ज्ञातव्य है। इस अपेक्षा से आत्मा का ज्ञान ही अध्यात्म का परम विज्ञान है।

आत्मानुभूति में बाधक

2. **आत्मा की अनुभूति में, बाधक एक विकार।**
घटक उभय उसके प्रखर, अहंकार ममकार।।

आत्मा की पहचान या आत्मानुभव में बाधक तत्त्व है विकार। उसकी उत्पत्ति के दो प्रबल कारण हैं—अहंकार और ममकार। आचार्य रामसेन के शब्दों में ये दोनों मोह राजा के सेनानी हैं—'अहंकार ममकार नामानी द्वौ सेनान्यौ मोहभूपतेः।' इन दोनों सेनानियों पर विजय पाने से ही आत्मा की पहचान हो सकती है।

3. **अहंकार उपाधि का, अविच्छिन्न संबंध।**
निरुपाधिक चैतन्य का, यह कैसा अनुबंध।।

जहां अंधकार है, वहां उपाधि (भावात्मक रोग) है, क्योंकि इनका आपस में गहरा संबंध है। उपाधि शब्द का अर्थ आरोपित या अर्जित विशेषण भी है। चेतना मूलतः निरुपाधिक होती है। निरुपाधिक अवस्था में अहंकार को पनपने का अवकाश ही नहीं रहता, किंतु जब तक वह मोह के घेरे से मुक्त नहीं होती, निरुपाधिक नहीं बन पाती।

4. **मैं समृद्ध मैं न्यायविद्, मैं अनन्य आधार।**
आरोपण के चक्र में, चलता जग व्यवहार।।

मैं धनवान् हूं, मैं न्यायवेत्ता हूं, मैं ही एक मात्र आधार हूं—इस प्रकार व्यक्ति किसी भी स्थिति के साथ अहं तत्त्व या मैं भाव को जोड़ता है। यह एक तरह का आरोपण है। इस आरोपण के चक्र में ही जगत का सारा व्यवहार चलता है। प्रस्तुत पद्य में कुछ उपाधियों को साक्षात् दिखाया गया है। इस प्रकार की जितनी उपाधियां हैं, उनके साथ व्यक्ति का अहं जुड़ा रहता है।

5. **प्रबल उपाधिक चेतना, प्रबल क्रोध अभिमान।**
प्रबल लोभ कैसे बने, आत्मा की पहचान।।

जहां उपाधिक चेतना की प्रबलता हो तथा क्रोध, अभिमान और लोभ की प्रबलता हो, वहां आत्मा की पहचान कैसे होगी? आत्मा की पहचान में सर्वाधिक बाधक तत्त्व उपाधियां और कषाय की प्रबलता है।

मैं और मेरा

6. **मैं हूं मैं है भेद पर, जब जाता है ध्यान।**
संभव बनती है तभी, आत्मा की पहचान।।

मैं हूं और मैं है—इन दोनों वाक्यों में भेद है, उस पर ध्यान केंद्रित होने से ही आत्मा की पहचान संभव है। उक्त वाक्यों में 'हूं' उपाधि का प्रतीक है तथा 'है' अस्तित्व का सूचक है। पश्चिमी देशों में हूं तथा है का विचार बहुत व्यापक है।

7. **मूर्च्छा यदि होती नहीं, तो मैं मेरा भाव।**
चेतन के चैतन्य का, बनता नहीं स्वभाव।।

आत्मा पर मूर्च्छा का आवरण होता है तब अहंकार और ममकार जागता है। मूर्च्छा का आवरण हंटने के बाद अमुक काम करने वाला मैं हूं, अमुक वस्तु मेरी है—इस प्रकार का भाव चेतना का स्वभाव नहीं बनता, क्योंकि उपाधि का मूल कारण मूर्च्छा है। कारण के अभाव में कार्य नहीं होता। उपाधि के अभाव में मैं और मेरेपन का भाव पैदा नहीं होता। 'अयमात्मा'—यह आत्मा है, इस वाक्य में केवल अस्तित्व का बोध होता है। इसके साथ मूर्च्छा का योग होते ही 'अहमात्मा'—मैं आत्मा हूं, यह अहंकार जन्म लेता है।

8. पुद्गल जड़ चित् चेतना, दोनों भिन्न स्वभाव।
स्व-स्वामी संबंध है, मूर्च्छा का अनुभाव।।

पुद्गल जड़ है और आत्मा चेतन है। इन दोनों का स्वभाव भिन्न-भिन्न है। पुद्गल कभी चेतन नहीं हो सकता और आत्मा कभी जड़ नहीं हो सकती। फिर भी इनके बीच स्व-स्वामीभाव संबंध बनता है। आत्मा स्वामी बनती है और पुद्गल उसका स्व बनता है। इसका कारण मूर्च्छा है। मूर्च्छा न हो तो संबंध की स्थापना हो ही नहीं सकती।

9. दृष्टि-विपर्यय है सही, ममता का परिणाम।
समता की अनुभूति में, आत्मोदय अभिराम।।

जहां ममता है, मूर्च्छा है, उसकी परिणति विपरीत दृष्टिकोण में होती है। विपरीत दृष्टिकोण का नाम मिथ्यात्व है। उसका हेतु है ममता। जहां समता की अनुभूति होती है, वहां दृष्टिकोण सम्यक् बनता है। आत्मा का विकास उसी स्थिति में संभव है।

कोई भी पदार्थ मिथ्या या सम्यक् नहीं होता। पदार्थ मेरा है—यह ऐकांतिक धारणा मिथ्या दृष्टिकोण है। सम्यक्त्व का वास्तविक अर्थ है आत्मा और पुद्गल की भिन्नता का बोध।

'पदार्थ' पदार्थ है और 'मैं' मैं है। इनको एक मानना अथवा पदार्थ में मेरेपन का भाव जागना ही मिथ्या दृष्टि है। एक ही पदार्थ के प्रति दोनों प्रकार के दृष्टिकोण बन सकते हैं।

10. पर में तो आत्मीय मति, वही दुःख का मूल।
विस्मृति है निज भाव का, यह कैसा बातूल।।

परभाव में अपनेपन की बुद्धि दुःख का मूल कारण है। अपनी आत्मा के अतिरिक्त संसार में जो कुछ है, वह पर है—यह एक सचाई है। इस सचाई पर आवरण आते ही व्यक्ति पर के साथ अपनत्व जोड़ लेता है। इससे आत्मस्वरूप की विस्मृति हो जाती है। यह एक विचित्र चक्रवात है। इसमें फंसने के बाद निकलना बहुत कठिन हो जाता है।

11. कर्म मोह का हेतु है, मोह कर्म का हेतु।
बनता भाव पदार्थ का, यह संयोजक सेतु।।

कर्म मोह का हेतु बनता है और मोह कर्म का हेतु बनता है। इनमें हेतु-हेतुमद्भाव संबंध है। अतीत का मोह कर्म का हेतु है और वर्तमान का कर्म भावी मोह का हेतु है। पदार्थ और भाव का संयोजन करने वाला सेतु यही मोह है। मूलतः पदार्थ अलग है और भाव अलग है। मोह इन दोनों को जोड़ देता है।

क्रमशः.....

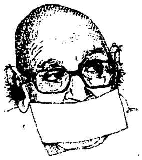

तुलसी है अभिनव तीर्थधाम

–साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

तुलसी है अभिनव तीर्थधाम, जग के पुण्यों का फल प्रकाम।।

तुलसी मानव की आशा है, पौरुष की नव परिभाषा है।
जनजागृति की अभिलाषा है, तुलसी तैजस का अपर नाम।।

तुलसी विकास का मूर्त रूप, तुलसी जीवन की छांव धूप।
हर मंजिल पर है कीर्तिस्तूप, तुलसी की गाथा यह अनाम।।

तुलसी मानवता का सपूत, आध्यात्मिक वैभव है अकूत।
तुलसी समता का अग्रदूत, गतिशील लक्ष्य हित अविश्राम।।

तुलसी का नाम तितिक्षा है, पग-पग पर हुई परीक्षा है।
मूल्यों की सही समीक्षा है, बन गया सहज ही पूर्णकाम।।

तुलसी औषधि है मंगल है, तुलसी पौधा है परिमल है।
तुलसी निर्मल गंगाजल है, तुलसी कैसी अभिधा ललाम।।

तुलसी रामायण गीता है, तुलसी ने मन को जीता है।
पद-धूलि परम पुनीता है, हरती भक्तों का दुःख तमाम।।

तुलसी है महावीर गांधी, तुलसी ने मर्यादा बांधी।
उखड़ी युग-आस्थाएं सांधी, तुलसी में उतरे कृष्ण राम।।

तुलसी अष्टकम्

आचार्य महाप्रज्ञ

1. **सदानंदस्पंदः प्रवहति मनोहारिवदने, प्रशस्तं वात्सल्यं स्फुरित सुखदं नेत्रयुगले।**
विकासे विन्यस्ता विमलविपुलादृष्टिरनिशं, जगद्वंद्यः स्वामी विशदचरितो नाम तुलसी।।

जिनके मनोहारी मुख पर सदा आनंद का स्पंदन प्रवाहित रहता था, जिनके दोनों नेत्रों में सुखद और प्रशस्त वात्सल्य स्फुरित होता था, जिनकी विमल और विशाल दृष्टि निरंतर विकास कार्यों में लगी रहती थी, वे विशद चरित्र वाले गुरुवर्य तुलसी स्वामी जगद्वंद्य हैं।

2. **अनन्तं माहात्म्यं वचनविषयं केन विहितं, स्वयं सिद्धा वाणी सहजमतिमानाप्तपुरुषः।**
समृद्धो वाक्सिद्धेरतनुमहिमा सिद्धपुरुषः, जगद्वंद्यः स्वामी विशदचरितो नाम तुलसी।।

उनका माहात्म्य अनंत था। कौन उसे अपनी वाणी का विषय बना सका? उसका प्रतिपादन कर सका? उनकी वाणी स्वयं सिद्ध थी। उनकी मति नैसर्गिक थी। वे आप्तपुरुष थे। उन्हें वचनसिद्धि प्राप्त थी। उससे वे समृद्ध थे। उनकी महिमा अपार थी। ऐसे सिद्धपुरुष थे। ऐसे विशद चरित्र वाले गुरुवर्य तुलसी स्वामी जगद्वंद्य हैं।

3. **कृता धर्मक्रान्तिर्निरसनमिता भ्रान्तिरखिला, प्रतिष्ठां संप्राप्तं पुनरपि यतो मूल्यममलम्।**
स धर्मः किं धर्मो यदि न मनुजो नीतिनिपुणः, जगद्वंद्यः स्वामी विशदचरितो नाम तुलसी।।

उन्होंने धर्म की क्रांति की। धर्म के विषय में होने वाली सब भ्रांतियां टूट गई हैं। नैतिक मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठा हुई। उनका अभिमत था—वह धर्म क्या धर्म है जो मनुष्य को नीतिनिपुण नहीं बनाता। ऐसे विशद चरित्र वाले गुरुवर्य तुलसी स्वामी जगद्वंद्य हैं।

4. **मनः पीठासीनः प्रथयसि मनःशान्तिमतुलां, वचः श्रेण्यारूढः सृजसि वचसो गौरवमलम्।**
मनोवाक्कायानां कथमिव सुयोगोऽजनि महान्, जगद्वंद्यः स्वामी विशदचरितो नाम तुलसी।।

स्मृति के क्षण में प्रभो! तुम मन की पीठ पर आसीन होते हो तब अतुल मानसिक शांति का विस्तार करते हो। स्तुति के क्षण में प्रभो! तुम वचन श्रेणी में आरूढ़ होते हो तब स्तुतिकार के वचन की गरिमा का सृजन करते हो। तुम्हारे व्यक्तित्व में मन, वचन और काया का यह सुयोग कैसे हुआ, आश्चर्य है। इसका तात्पर्य है—तुम्हारे मन में दूसरों को मानसिक शांति देने की, तुम्हारी वाणी में दूसरों की वाणी को आदेय बनाने की और तुम्हारी काया में दूसरों को सौंदर्यानुभूति कराने की क्षमता है। यह योग कैसे हुआ? ऐसे विशद चरित्र वाले गुरुवर्य तुलसी स्वामी जगद्वंद्य हैं।

5. **अपूर्वा श्रीसंपत् प्रतिपदमहोभावमुखरा, अपूर्वा ह्रीसंत् सहजमनुशास्तिं जनयति।**
अपूर्वा धीसंपत् स्मृतिरपि विचित्राशयवती, जगद्वंद्यः स्वामी विशदचरितो नाम तुलसी।।

अपूर्व थी तुम्हारी श्रीसंपदा (आभा की संपदा) जो देखने वालों को पग-पग पर अहोभाव से मुखर बना देती थी। अपूर्व थी तुम्हारी ह्रीसंपदा (आत्मानुशासन की संपदा) जो सहज ही अनुशासन की भावना का सृजन करती थी। अपूर्व थी तुम्हारी धीसंपदा (बौद्धिक संपदा) और स्मृति भी जो विचित्र-विलक्षण आशय वाली बनी हुई थी। ऐसे विशद चरित्र वाले गुरुवर्य तुलसी स्वामी जगद्वंद्य हैं।

6. **अपूर्वा सा भक्तिर्जिनवरवचः ख्यातिमगमद्, अपूर्वा सा शक्तिः प्रबलपुरुषार्थे प्रकटिता।**
अपूर्वा सा शास्तिः प्रगति मधिरूढा फलवती, जगद्वंद्यः स्वामी विशदचरितो नाम तुलसी।।

अपूर्व थी तुम्हारी वह भक्ति जिससे जिनवर की वाणी प्रख्यात हुई, अपूर्व थी तुम्हारी वह शक्ति जो प्रबल पुरुषार्थ में प्रकट हुई। अपूर्व थी तुम्हारी व शासन पद्धति जिसने प्रगति का आरोहण किया और वह फलवती बनी। ऐसे विशद चरित्र वाले गुरुवर्य तुलसी स्वामी जगद्वंद्य हैं।

7. **विकासस्य श्वासः प्रतिपलमनायासमुदितः, प्रतीक्षासंलीना इव नवनवोन्मेषनिवहाः।**
समीक्षानैपुण्यं सुकृतिसुलभं दुर्लभतमं, जगद्वंद्यः स्वामी विशदचरितो नाम तुलसी।।

तुमने विकास का जो श्वास लिया वह प्रतिपल अनायास ही गतिशील होता रहा। नए-नए उन्मेषों के समूह मानो आगे बढ़ने की प्रतीक्षा करने में लीन हो रहे थे। तुम्हारी समीक्षा की कुशलता भाग्यशाली के लिए ही सुलभ है। समीक्षा की ऐसी शक्ति का विकास होना दुर्लभतम हैं। ऐसे विशद् चरित्र वाले गुरुवर्य तुलसी स्वामी जगद्वंद्य हैं।

8. **श्रिये श्रीं श्रीं श्रीं श्रीं जपतु तुलसीनामवलये, ह्रिये ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः भवतु शिवनिष्ठा श्रुतवती।**
धिये ऐं ऐं ऐं ऐं स्फुरतु सततं कण्ठकमले, जगद्वंद्यः स्वामी विशदचरितो नाम तुलसी।।

श्रीसंपदा के लिए 'तुलसी' नाम का मानसिक वलय बनाकर श्रीं श्रीं श्रीं .... का जप चलता रहे। ह्रीसंपदा के लिए ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः का जप चलता रहे। उससे कल्याण निष्ठा श्रुतवती बने। बौद्धिक संपन्नता के लिए कण्ठकमल में ऐं ऐं ऐं .... का जप स्फुरित रहे। ऐसे विशद चरित्र वाले गुरुवर्य तुलसी स्वामी जगद्वंद्य हैं। ❐

समाधान के दर्पण में देश की प्रमुख समस्याएं

जहां जीवन है, वहां समस्या है। जहां समस्या है, वहां समाधान भी है। समस्या का सर्जक मनुष्य है तो उसका समाधान भी मनुष्य के मस्तिष्क में है। जिस समाज और देश में इस प्रकार की आस्था जीवित है, वह कभी निराश होकर नहीं बैठता। जिस देश की आंखों में समस्याएं ही समस्याएं रहती हैं, जिसको समाधान की राह दिखाई नहीं देती, वहां अनास्था का स्वर मुखर होता है। अनास्था ऐसा कीट है, जो देश की चेतना को भीतर ही भीतर खोखला बना देता है। ऐसे देश में रहने वाले लोग इस बात को भूल जाते हैं कि जो चढ़ते हैं, उनको उतरना भी पड़ता है। चढ़ाव और उतार के भी अपने सिद्धांत हैं। सिद्धांतहीनता की राजनीति न तो व्यक्ति को सही रूप में समस्याओं को देखने की दृष्टि देती है और न ही उनका समुचित समाधान दे पाती है। हमारा देश इस समय ऐसी ही स्थिति का सामना कर रहा है।

भारतवर्ष की आजादी में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का योगदान अविस्मरणीय है।

गांधीजी अपने देश को राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ सांस्कृतिक गरिमा भी देना चाहते थे। उनके अपने सिद्धांत थे, अपने आदर्श थे। वे राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सत्ता को विकेंद्रित रखने के पक्ष में थे। आज सत्ता या शक्ति केंद्रित हो गई है। इसके केंद्रीयकरण में गांधीजी को जिन समस्याओं का आभास हुआ था, वे आक्रामक मुद्रा में खड़ी हो गई हैं। एक ओर देश को स्थिर, निश्चिंत और उज्ज्वल भविष्य देने की बात तो दूसरी ओर समस्याओं का कसता हुआ शिकंजा है। पता नहीं सत्ता और संपदा के शीर्ष पर बैठे व्यक्तियों का उन समस्याओं से कितना सरोकार है, जिनसे जनता का जीवन दूभर होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में देश की समस्याओं तथा उनके समाधान की दिशा में एक तटस्थ विश्लेषण की अपेक्षा है–

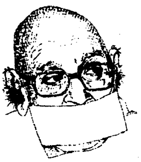

आर्थिक विषमता :

आज की सबसे बड़ी समस्या है—आर्थिक विषमता। इससे संपूर्ण मानवजाति प्रभावित है। संसारभर के कुछ हजार व्यक्ति बहुत अधिक अमीर हैं। उनके पास अरबों-खरबों की संपत्ति है। जनता का बहुत बड़ा भाग आर्थिक विपन्नता का जीवन जी रहा है, उसका एक भाग ऐसा भी है जिसके पास दो जून खाने को रोटी नहीं है, पहनने के लिए कपड़े नहीं है, रहने के लिए मकान नहीं है। शिक्षा और चिकित्सा के साधन तो उनके पास होंगे भी कहां से? एक और जनता के दु:ख-दर्द से बेखबर विलासिता में आकंठ डूबे हुए लोग हैं दूसरी ओर जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से भी वंचित हैं—अभावों से घिरे लोग! आर्थिक विषमता की इस धरती पर समस्याओं के नए झाड़-झंखाड़ उगते और बढ़ते जा रहे हैं।

इस युग में संचार के साधन इतने विकसित हो गए कि हर व्यक्ति को एक-दूसरे की स्थिति ज्ञात रहती है। लोकतंत्रीय शासन-व्यवस्था और बढ़ती हुई शिक्षा ने भी आपस की दूरियां कम कर दीं। देहातों में रहने वाले लोगों का नजरिया भी बदल रहा है। भाग्यवादी अवधारणाएं बदल रही हैं। एक समय था, जब लोग सत्ता और संपदा को भाग्य का फल मानकर मौन रहते थे। अब वे ही उसे शोषण के साथ जोड़ रहे हैं। शोषण का प्रतिकार करने के लिए उनमें क्रूरता और उग्रता पनप गई है। आज जहां कहीं हिंसा या आतंकवाद का वातावरण है, उसके पीछे सत्ता और संपत्ति हथियाने का मनोभाव सक्रिय है।

वोटों की राजनीति :

लोकतांत्रिक शासन-पद्धति की बुनियाद है चुनाव। लोकतंत्र में चुनाव की जो स्वस्थ प्रक्रिया है, उसे विस्मृत कर अलोकतांत्रिक साधनों का उपयोग किया जाए तो लोकतंत्र का भविष्य सुरक्षित कैसे रहेगा? कोरे चुनावी नारों और आकर्षक घोषणा-पत्र से लोकतंत्र आगे नहीं बढ़ता। वह मूल्यों और आदर्शों की प्रतिष्ठा के आधार पर आगे बढ़ता है। चुनाव में धन, जाति और संप्रदाय, इन तीनों को बल मिल रहा है। इससे आगे यह भी कहा जा सकता है कि चुनाव के ये ही प्रमुख घटक हैं, इनके आधार पर चुनाव जीतने वाले लोग विजयी होकर इनकी अपेक्षाओं को पूरा करने में लग जाते हैं। संपत्ति, जाति और संप्रदाय चुनाव जीतने में सहायक बनते हैं, फिर सत्ता में आने वाले लोगों की सहायता से ये अपने प्रयोजन सिद्ध करते हैं। यह एक ऐसा चक्र बन जाता है जो कभी टूटता नहीं है। इस चक्रव्यूह में आम जनता की समस्याओं को समझने का अवसर ही कब मिलता है? ऐसे जनप्रतिनिधि निर्वाचित होकर भी जनता के हितों की सुरक्षा कैसे कर सकेंगे? सचमुच! आज 'चुनाव पद्धति' के आगे एक प्रश्नचिह्न लगा हुआ है।

अस्पृश्यता :

हमारे देश के संविधान में छुआछूत को दंडनीय अपराध माना गया है। संविधान लागू होने के इतने वर्षों बाद भी अस्पृश्यता के संस्कार ज्यों के त्यों जीवित हैं, यह कैसी विडंबना है? जब हर व्यक्ति को अपने ढंग से जीने का और व्यक्तित्व विकास का अधिकार है, तब जातिविशेष के प्रति घृणा फैलाना या अत्याचार करना क्या उस अधिकार का हनन नहीं है? सवर्ण समाज द्वारा हरिजनों का उत्पीड़न और शोषण होना एक लज्जाजनक हादसा है। हरिजनों का उत्पीड़न, हरिजनों की सामूहिक हत्या, हरिजन महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार और उन्हें तंग करने वाली हरकतें, क्या मानवीय दृष्टि से उचित है?

देश में लगभग पंद्रह करोड़ हरिजन हैं। उनका संबंध हिंदू समाज के साथ है। उनकी जो दुर्दशा हो रही है, उसका मुख्य कारण है धर्मांधता। धर्मांधता में लोग कभी. उनके मंदिर प्रवेश पर रोक लगाते हैं और कभी

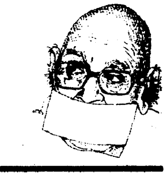

अन्य बहाना बनाकर अकारण ही उन्हें सताते हैं। क्या ऐसा कर उन्हें धर्म-परिवर्तन की ओर नहीं धकेला जा रहा है? क्या ऐसा होना समाज के हित में होगा? कुछ धर्मगुरु भी बेबुनियादी बातों को प्रश्रय देते हैं। जातिवाद का विष घोलते हैं और हिंदू समाज को आपस में लड़ा कर अपनी अहंवादी मनोवृत्ति का परिचय देते हैं।

बुराई अस्पृश्य हो सकती है, गंदगी अस्पृश्य हो सकती है, बीमारी अस्पृश्य हो सकती है, पर मनुष्य कभी अस्पृश्य होता है, यह बात समझ में नहीं आती। वह मनुष्य, जो बुरा नहीं, गंदा नहीं, बीमार नहीं, फिर भी वह अस्पृश्य है, क्योंकि वह अमुक कुल में जन्मा है, क्योंकि उसका संबंध अमुक जाति से है। किसी कुल और जाति में पैदा होना भी किसी के हाथ की बात है?

अस्पृश्यता-निवारण की दृष्टि से हमने दो काम किए—

(1) सवर्ण लोगों की अहंभावना मिटाने का प्रयत्न।

(2) दलित वर्ग के लोगों की हीनभावना को दूर करने का प्रयत्न।

मेरे अभिमत से जातीयता का गर्व जितना बुरा है, हीनभावना भी उससे कम बुरी नहीं है। अपने आपको हीन, दीन और अस्तित्वहीन मानने वाले लोग अनचाहे ही जातीयता की भावना को प्रोत्साहन देते हैं। ऐसे लोगों को विश्वास में लेकर समझाने से ही उन्हें अपने अस्तित्व का बोध हो सकेगा।

मादक पदार्थ :

नशा आज की युवापीढ़ी का फैशन है। स्कूल, कॉलेज में पढ़ने वाले विद्यार्थी द्रुतगति से नशे के शिकार होते जा रहे हैं। सिगरेट, शराब, हेरोइन, स्मैक, चरस, गांजा, अफीम और मारफीन आदि न जाने कितनी चीजें हैं जो एक समूची पीढ़ी को पतन के गर्त में धकेल रही हैं। कुछ चीजें तो इतनी नशीली और घातक हैं, जो मौत को खुला निमंत्रण देने वाली हैं। प्रश्न उठता है कि एक प्रबुद्ध और चिंतनशील पीढ़ी उसकी गिरफ्त में कैसे आ जाती है। मादक पदार्थों के सेवन में हेतुभूत कारणों का सर्वे करने के बाद जो निष्कर्ष निकले हैं, उनमें एक भी कारण ऐसा नहीं है जो नशे की अपरिवर्धता को प्रमाणित करता है। नशेबाज मित्रों का संपर्क, नशा क्या होता है? यह उत्सुकता, अनुकरण, निराशा, तनाव, असफलता अवसाद से छुटकारा पाने का एहसास आदि-आदि ऐसे कारण हैं जो व्यक्ति को नशीली वस्तुओं के प्रयोग की प्रेरणा देने वाले हैं। जबकि क्षणिक ताजगी या विस्मृति के अतिरिक्त इनके परिणाम भयावह रहे हैं।

मादक पदार्थों के सेवन से एक बार नाड़ी संस्थान की शिथिलता का आभास होता है। उससे व्यक्ति को राहत का अनुभव होता होगा, पर कुछ दिन इसका प्रयोग करने के बाद ये चीजें बेअसर होती जाती हैं। ऐसी स्थिति में अधिक तेज नशीले पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। जो एक गंभीर संकट बन रहा है। नशे की यह प्रवृत्ति व्यक्ति को आर्थिक और यौन अपराधों की ओर अग्रसर करती है। शारीरिक और मानसिक असंतुलन का खतरा तो वहां पग-पग पर देखा जा सकता है।

शिक्षा-नीति :

भारत के सामने जो समस्याएं सिर उठाए खड़ी हैं, उनमें एक ज्वलंत समस्या है शिक्षानीति। समाज, राष्ट्र के विकास का मूलभूत आधार है शिक्षा। शिक्षा ही जब मूल्यहीन हो जाए तो मूल्यों की संस्कृति फलेगी किस बल पर? प्रत्येक समाज या देश का अपना शिक्षातंत्र होता है। शिक्षा का संबंध जीवन-मूल्यों से न जुड़कर साक्षरता से जुड़ता है तो विद्यार्थी का बौद्धिक विकास तो हो सकता है, पर न तो उसकी रचनात्मक ऊर्जा को नई दिशा मिल सकती है और न ही वह विषमतावादी व्यवस्थाओं में परिवर्तन की बात सोच सकता है।

शिक्षा में पुस्तकीय ज्ञान आवश्यक है, पर उससे मात्र बौद्धिक विकास होता है। जब तक विद्यार्थी का मस्तिष्क प्रशिक्षित नहीं होता, उसकी करुणा और संवेदनशीलता कम होती जाती है। संवेदनशीलता की स्थिति में उदारता, सहिष्णुता, संयम आदि मानवीय गुणों का विकास नहीं हो पाता। उसे कठोर जीवन जीने का अभ्यास भी नहीं होता। कठोर जीवन जीने का अभ्यास न हो अथवा उसमें आस्था न हो तो व्यक्ति के असंतुलन का बांध बहुत जल्दी टूट जाता है और उसके पग अपराधों की ओर बढ़ने लगते हैं।

शिक्षा के व्यवस्था पक्ष का जहां तक प्रश्न है उसमें सुधार की ओर ध्यान दिया जा रहा है। स्कूल और कॉलेज में बड़े-बड़े भवन, फर्नीचर, खेल के मैदान, पाठ्य-पुस्तकें और प्रशिक्षित अध्यापक ये सब हैं, पर शिक्षा में जीवन-मूल्यों की ओर ध्यान बहुत कम है। इसी कारण विद्यार्थी दिशाहीन हो रहे हैं। किसी भी देश का भविष्य उसके स्वर्णिम अतीत पर निर्भर नहीं होता। भविष्य का संबंध है स्वस्थ, समुन्नत और प्रशिक्षित युवा पीढ़ी से। यह पीढ़ी जब तक सक्षम नहीं होती, नए निर्माण की बात ही नहीं सोची जा सकती। जिस देश में विद्यार्थियों को राजनीति का मोहरा बनाकर गुमराह किया जाता है, उनकी शिक्षा में व्यवधान उपस्थित किया जाता है, उस देश का भविष्य कैसा होगा, कल्पना नहीं की जा सकती?

धर्म और राजनीति :

हमारे देश के संविधान में एक शब्द है—सैक्यूलर। इस शब्द का अर्थ किया जाता है धर्मनिरपेक्ष। धर्म-निरपेक्षता की नीति अपने आप में एक समस्या है। धर्म का संबंध आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों से है। इनसे निरपेक्ष रहकर कोई भी नीति जनता के हितों को संरक्षण दे सकेगी, यह बात समझ में नहीं आती। धर्म के नाम पर आज जो हिंसा हो रही है, उसका सीधा संबंध पंथ या संप्रदाय के साथ है। सैक्यूलर शब्द की अर्थ-मीमांसा भी पंथ-निरपेक्षता या संप्रदाय-निरपेक्षता समीचीन लगती है। इस संबंध में प्रधानमंत्री राजीव गांधी से भी हमारी बात हुई थी। मेरा यह निश्चित अभिमत है कि जब तक सैक्यूलर शब्द का अर्थ सही नहीं होगा, आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों की समस्या सुलझ नहीं पाएगी।

राजनीति और धर्म का पारस्परिक संबंध भी चर्चा का मुख्य बिंदु है। कुछ लोग इस बात पर अड़े हुए हैं कि धर्म को राजनीति से अलग नहीं किया जा सकता। यह आग्रहपूर्ण चिंतन है। धर्म के हस्तक्षेप से राजनीति विशुद्ध राजनीति नहीं रहेगी। इसी प्रकार धर्म में राजनीति का हस्तक्षेप धर्म की विशुद्धि नहीं रहने देगा। इन दोनों के मिश्रण से एक तीसरी ही नीति का उद्भव होगा, जो दोनों की पवित्रता पर संदेह पैदा करेगी। धर्म और राजनीति दोनों की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार किए बिना समस्या का समाधान नहीं निकलेगा।

पर्यावरण :

पर्यावरण की समस्या आज जिस गति से बढ़ रही है, इस पृथ्वी पर प्राणियों का जीवन मुश्किल हो सकता है। एक ओर प्रकृति का असीम दोहन, दूसरी ओर पशु-पक्षियों का जीवन-संहार। इसमें मुख्य कारण है मनुष्य की विलासी मनोवृत्ति और व्यावसायिक बुद्धि। वैज्ञानिक लोग चेतावनी दे रहे हैं कि भूमि और जल का दोहन जिस रूप में हो रहा है, आने वाले वर्षों में पानी की भयंकर समस्या उत्पन्न हो जाएगी। बड़े शहरों में गंदी नालियों का पानी साफ कर पीने की परिस्थिति आ जाएगी।

इधर प्रसाधन सामग्री के लिए मासूम और बेजुबान पशु-पक्षियों पर कहर ढाया जा रहा है, उधर हाथीदांत और सींग के लिए हाथियों और गैंडों को मारा जा रहा

है। पशु-पक्षियों की हत्या पर रोक नहीं लगी तो कुछ दुर्लभ प्रजातियों के लोप होने की संभावना बढ़ जाएगी। मनुष्य की सुखवादी और सुविधावादी मनोवृत्ति कैसी क्रूरता को जन्म दे रही है? आज आवश्यकता तो इस बात की है कि देश के जंगल तो क्या, एक वृक्ष भी न कटे, वहां वृक्षों के साथ पशु-पक्षी भी कटते जा रहे हैं! क्या मनुष्य इतना संवेदनहीन हो गया है कि न तो उसे किसी की कराह सुनाई देती है और न किसी का तड़प-तड़प कर दम तोड़ना दिखाई देता है?

पर्यावरण को असंतुलित करने में आणविक अस्त्र-शस्त्रों का भी पूरा हाथ है। इस समय संसार में पचास हजार से भी अधिक परमाणु अस्त्र हैं। प्रसिद्ध अमरीकी वैज्ञानिक कार्ट सैगोन एवं पाल क्रुटर्जन ने आगाह किया है कि विश्व की महाशक्तियों के पास एकत्र परमाणु हथियारों का एक प्रतिशत भी प्रयोग में लिया गया तो भयंकर बरबादी होगी। मानव जाति के अस्तित्व को खतरे में डालने वाले अणु-आयुधों से शक्ति और समृद्धि की कल्पना संजोना पागलपन से अधिक और क्या है?

दिशा समाधान की

समस्या किसी भी क्षेत्र की हो—आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, शैक्षणिक या प्राकृतिक—उन सबका मूल है *मानवीय मूल्यों के प्रति आस्थाहीनता। मानवीय मूल्यों को दो भागों में बांटा जा सकता* है—नैतिक मूल्य और आध्यात्मिक मूल्य। आज आध्यात्मिक मूल्यों का स्थान सांप्रदायिक मूल्यों ने ले लिया है और नैतिक मूल्यों के स्थान पर प्रतिष्ठा और बड़प्पन के तत्त्व प्रतिष्ठित हो रहे हैं। सार्वजनिक मंच पर नैतिकता, न्याय और समता की बात उठाने वाले व्यक्ति भी जब अपने घर में झांकते हैं तो उन्हें अपना जीवन सिद्धांतहीनता के पैबंदों से भरा हुआ मिलता है। ऐसे परिवेश से मंच पर भाषण तो दिए जा सकते हैं, पर सिद्धांतों एवं मूल्यों के लिए लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती।

साम्यवादी और लोकतंत्रीय व्यवस्थाओं का अपना-अपना संकट है। साम्यवाद में व्यक्तिगत स्वामित्व समाप्त हो जाता है और लोकतंत्र में स्वामित्व विस्तार की खुली छूट है। ये दोनों ही अतियां हैं। इस अतिवाद से बचने का एक रास्ता भगवान महावीर ने सुझाया था। यह रास्ता है इच्छाओं के अल्पीकरण का। इससे असीम लालसा नियंत्रित होती है और व्यक्तिगत स्वामित्व सर्वथा प्रतिबंधित नहीं होता। यह मध्यम मार्ग आर्थिक समस्या का एक समाधान है।

आर्थिक विषमता को कम करने का एक दूसरा समाधान है संविभाग का। उद्योगपति के पास पूंजी होती है। वह अपनी पूंजी का निवेश कर व्यवसाय करता है। उसके व्यवसाय में सैकड़ों श्रमिक काम करते हैं। चालू परंपरा के अनुसार उनको थोड़ा-सा पारिश्रमिक मिलता है। शेष संपत्ति का मालिक व्यवसायी होता है। इस परंपरा को बदलकर व्यवसाय में श्रमिकों की भागीदारी निश्चित हो जाए तो व्यवसाय जगत में उभरने वाली हड़ताल आदि समस्याएं नहीं उभरेंगी, विषमता का अनुपात घटेगा और श्रमिकों में संतुष्टि के साथ अपनत्व का भाव बढ़ेगा।

विगत कई वर्षों से चुनाव सुधार की व्यापक चर्चा सुर्खियों में है। सरकार और विपक्ष दोनों ओर से सुधार की बात उठी है, पर अब तक सुधार का कोई रास्ता नहीं मिला है। इसमें आर्थिक, जातीय और सामुदायिक जटिलताएं हैं, चुनाव में प्रत्याशी व्यक्ति को जिस जाति का बहुमत है उसकी शरण में जाना पड़ता है। इसमें आर्थिक भ्रष्टाचार से भी बचाव नहीं हो सकता। इसके साथ चरित्रहनन और हत्या की घटनाएं भी बढ़ती जा रही हैं। इन सबकी रोकथाम के लिए जब तक कोई कारगर उपाय नहीं लगता, अणुव्रत की चुनाव आचार-संहिता को प्रकाशदीप मानकर एकबारगी समाधान खोजा जा सकता है। मुझसे अगर कोई पूछे कि वह अपना वोट किसे दें? मैं उसे सुझाना चाहूंगा कि इस प्रसंग में पार्टी, पक्ष, विपक्ष, संप्रदाय, जाति आदि के लेबल को नजरंदाज कर सही व्यक्ति की खोज करनी चाहिए। उस व्यक्ति की थोड़ी-सी पहचान यह हो सकती है—

- जो नैतिक मूल्यों के प्रति आस्थाशील हो।
- जो ईमानदार हो।
- जो सत्यनिष्ठ हो।
- जो व्यसन मुक्त हो।
- जो निष्काम-सेवी हो।

इस प्रकार का वैशिष्ट्य जिस व्यक्ति में हो, वह देश का नेतृत्व सम्हाले तो ऐसे गुण जनता में संक्रांत हो सकते हैं। बहुत बड़ा दायित्व होता है लोकतांत्रिक देश की जनता पर। वह अपने दायित्व को समझे और समझ कर सही उपयोग करे तो समस्या की नकेल हाथ में आ सकती है, पर ऐसे काम को संपादित करने के लिए परस्मैपद की भाषा में न बोल कर आत्मनेपद में बोलने की अपेक्षा है। अणुव्रत स्वयं इस काम को उठाए तो यह उसका एक कारगर कदम प्रमाणित हो सकता है।

छुआछूत की समस्या न कानून से मिट सकती है, न उपदेश से। इसके लिए मनुष्य के मन में जमे हुए घृणा के संस्कारों को निरस्त करना होगा, मानवीय मूल्यों को प्रतिष्ठित करना होगा और समग्र मानवजाति के प्रति सौहार्द का वातावरण निर्मित करना होगा।

विद्यार्थी वर्ग या युवापीढ़ी को नशे की लत से मुक्त कराने के लिए भी सेमिनारों या भाषण से सफ़लता नहीं मिलेगी। इसके लिए कुछ औषधियां और कुछ ध्यान के प्रयोग सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न चाहे शिक्षा नीति का हो, पर्यावरण का हो या राजनीति और धर्म का हो, केवल राजनीति के पास इनका समाधान नहीं है, वैसे ही केवल धर्मगुरुओं के पास भी समाधान नहीं है। व्यवस्था परिवर्तन और मानसिक परिवर्तन का योग होने से ही समाधान की प्रक्रिया बैठ सकती है। व्यवस्था में सुधार का काम सत्ता के सिंहासन पर बैठे हुए व्यक्तियों का है तथा मानस परिवर्तन का काम धर्मगुरुओं का है। इनके साथ कुछ तटस्थ बौद्धिक व्यक्तियों का योग होना भी जरूरी है। व्यवस्था धर्म से प्रभावित हो, धर्म और व्यवस्था का योग मिले और बौद्धिक व्यक्ति अनुकूल वातावरण का निर्माण करे, यह त्रिकोणात्मक प्रक्रिया देश की अनेक समस्याओं का स्थाई समाधान खोज सकती है। ❐

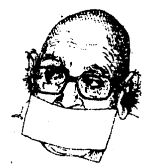

हर समस्या का समाधान संभव

बीसवीं सदी की समस्याओं में सबसे बड़ी समस्या है मूल्यहीनता की। संयम का मूल्यांकन होता तो बढ़ती हुई आबादी की समस्या जटिल नहीं होती। अपरिग्रह का मूल्य समझा जाता तो गरीबी की समस्या को पांव पसारने का अवसर नहीं मिलता। पुरुषार्थ को महत्त्व मिलता तो बेरोजगारी की समस्या नहीं बढ़ती। अहिंसा की मूल्यवत्ता स्थापित होती तो आतंकवाद की जड़ें गहरी नहीं होतीं। एकता और अखंडता का मूल्यांकन होता तो धर्म, भाषा, जाति आदि के नाम पर देश का विभाजन नहीं होता। मानवीय एकता या समता का सिद्धांत प्रतिष्ठित होता तो जातीय भेदभावों को पनपने का अवसर नहीं मिलता, छुआछूत जैसी मनोवृत्तियों को अपने पंख फैलाने के लिए खुला आकाश नहीं मिलता। इस प्रकार की और भी अनेक समस्याएं हैं, जो नासूर बनकर असाध्य या कष्ट-साध्य बनती जा रही हैं।

जीवन से जुड़ी समस्याओं पर आइये दृष्टि डालें और आचार्यश्री तुलसी द्वारा दिये गये समाधानों को जीवन में उतारें।

भ्रूण हत्या : एक प्रश्नचिह्न

हिंसा बढ़ रही है। आतंकवाद फैल रहा है। अपहरण की संस्कृति अपनी जड़ें जमा रही हैं। चोरी और लूटमार की घटनाएं थमी नहीं हैं। हत्याओं और आत्महत्याओं का सिलसिला चल रहा है। समाचार-पत्रों में ये संवाद सुर्खियों में प्रकाशित होते हैं। हिंसा से जुड़ी ऐसी घटनाओं की स्थान-स्थान पर भर्त्सना होती है। कोई भी संवेदनशील व्यक्ति इनको उचित नहीं मानता। जिस युग में मानवाधिकार की चर्चा वैश्विक स्तर पर चलती हो, उस युग में असुरक्षा और आतंक का वातावरण बहुत बड़ी चुनौती बनकर खड़ा है। जिस समय मजदूरों को बंधक बनाने और बालश्रम की प्रवृत्तियों के औचित्य पर प्रश्नचिह्न खड़े हो रहे हों, उस समय बिना ही किसी अपराध के मनुष्य को गोलियों से भून देना किस मनोवृत्ति का परिचायक है?

हर मनुष्य को जीने का अधिकार है। मनुष्य ही क्यों, प्राणीमात्र जीने का अधिकारी है। किसी भी प्राणी के प्राणों को बलात् लूट लेना हिंसा है। हिंसा के दो रूप हैं—अपरिहार्य और परिहार्य। एक गृहस्थ को जीवनयापन के लिए जो हिंसा करनी पड़ती है, उससे बचना संभव नहीं है। अपरिहार्य या आवश्यक हिंसा को रोका नहीं जा सकता, किंतु जिस हिंसा से बचा जा सकता है, जिसके बिना जीवन चल सकता है, वैसी हिंसा होती है तो लगता है कि मनुष्य क्रूर बन रहा है। ऐसी हिंसा को रोकना आवश्यक है, किंतु जिस देश या समाज में अर्थहिंसा की तरह अनर्थहिंसा को भी वैध मान लिया जाता है, कानून के संरक्षण में निश्चिंत होकर आदमी सरेआम हत्या करता हो, उस देश या समाज में संवेदनशीलता कहां रहेगी?

संसार में मत्स्य न्याय चलता है। बड़ी मछली छोटी मछली को खाती है। शक्तिशाली पशु दुर्बल पशुओं को मार कर पेट भरते हैं। कुछ पशु आदमखोर भी होते हैं, ऐसे पशुओं को समाप्त करने का अभियान चलाया जाता है, पर मनुष्य तो पशु नहीं है। वह अकारण ही किसी जीव की हत्या करे, दुर्बल और बेजुबान प्राणियों का प्राण-वियोजन करे, इसमें उसकी क्या महत्ता है? मनुष्य स्वभावतः हत्यारा नहीं है। मनुष्य जाति के दो वर्ग हैं—पुरुष और स्त्री। स्त्री को करुणा की मूर्ति माना जाता है, पर जब उसका नाम हत्या के साथ जुड़ता है तो आश्चर्य होता है। हत्या भी किसकी? पशु-पक्षियों की नहीं। आक्रांता मनुष्य की नहीं। अपराधी मनुष्य की नहीं। अपने ही खून की हत्या। कितनी नृशंसता! कितनी क्रूरता! एक स्त्री इतनी नृशंस और क्रूर क्यों हो जाती है? शोध का विषय है।

जिस हत्या की मैं चर्चा कर रहा हूं, वह है भ्रूण हत्या। एक मां अपनी अपाहिज संतान का पालन-पोषण करती है, उस समय वह एक देवी प्रतीत होती है। निःस्वार्थ भाव से अपनी सुख-सुविधाओं का बलिदान करने वाली वह मां अपने अजन्मे शिशु को मारने की स्वीकृति कैसे दे देती है? इस विषय में कानून क्या कहता है, मुझे उसमें नहीं उलझना है। मानवीय अधिकार की दृष्टि से

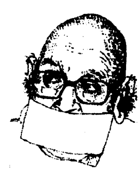

यह अनुचित है। क्या उस शिशु को जीने का अधिकार नहीं है? निरपराध हत्या की दृष्टि से भी गलत है। बेचारे उस शिशु ने किसका क्या अपराध किया? जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए गर्भपात को वैध मानना अर्थात् माता-पिता की गलती का प्रायश्चित्त उसकी संतान को देना है। कर्मशास्त्रीय दृष्टि से इसको महापाप माना गया है। भ्रूण-हत्या एक जघन्य अपराध है। कोई भी धर्मशास्त्र इसकी अनुमति नहीं दे सकता। यह अपराध नीतिशास्त्र सम्मत भी कैसे हो सकता है? राष्ट्रवाद या स्वार्थवाद के नाम पर जो नीति प्रवर्तित होती है, उसकी बात अलग है, क्योंकि वहां नीति पर स्वार्थ हावी हो जाता है।

भ्रूण परीक्षण की पद्धति अमानवीय बनती जा रही है। क्रोमोसोम की विकृति और वंशानुगत बीमारी की जांच के लिए परीक्षण की तकनीक विकसित हुई, किंतु उसका उपयोग गर्भस्थ शिशु के लिंग की पहचान के लिए अधिक हो रहा है। यदि गर्भस्थ शिशु कन्या हुई तो उसके अस्तित्व पर ही संकट आ जाता है। वैज्ञानिक युग में भी लड़के और लड़की को लेकर रूढ़ और भ्रांत धारणाओं को नहीं तोड़ा गया तो फिर ये कब टूटेगी? लड़का अपना भाग्य साथ लेकर आता है तो क्या लड़की अपना भाग्य बेचकर आती है! महावीर, बुद्ध और गांधी के देश में हिंसा का यह नया रूप भारतीय संस्कृति का उपहास है। कुछ प्रांतों में गर्भ परीक्षण पर प्रतिबंध लगा है, किंतु जब तक मनुष्य की मनोवृत्ति नहीं बदलेगी, वह नए रास्ते खोजता रहेगा।

अणुव्रत नैतिक मूल्यों का पक्षधर आंदोलन है। अणुव्रती बनने वाला व्यक्ति न तो निरपराध प्राणी का संकल्पपूर्वक वध करता है, न आत्महत्या करता है और न भ्रूण हत्या करता है। यदि अणुव्रत का यह एक नियम प्रभावशाली बन जाए तो आतंकवाद के साथ-साथ भ्रूण हत्या जैसी अमानवीय प्रवृत्ति अपने आप नियंत्रित हो सकती है।

अश्लीलता की समस्या

वर्तमान जीवनशैली की प्रखर समस्याओं में एक समस्या है अश्लीलता। अश्लीलता शब्द अशिष्टता, अभद्रता और दरिद्रता का बोधक बनता है। इसका संबंध भाषा और व्यवहार—दोनों के साथ है। मेरे अभिमत से वह भाषा, वह व्यवहार और वह दृश्य अश्लील होना चाहिए जो कामुकता को उत्तेजना देने वाला हो, जिसे शिष्ट समाज में लज्जाजनक और वर्जनीय माना जाता है तथा समूह में जिसकी अभिव्यक्ति से संकोच का अनुभव होता है। सीधे शब्दों में कहा जाए तो सेक्स के क्षेत्र में खुलापन का नाम है अश्लीलता। आज की भाषा में बेडरूम की घटना ड्राइंगरूम में लाने का प्रयत्न ही अश्लीलता है, फिर चाहे वह दृश्य हो, श्रव्य हो या क्रियात्मक हो।

इस युग में अश्लीलता के मुख्यस्रोत हैं—विज्ञापन, दूरदर्शन और सिनेमा—ये ऐसे माध्यम हैं, जो सब प्रकार की सामाजिक वर्जनाओं को तोड़कर अश्लीलता को निर्वस्त्र कर रहे हैं। विज्ञापन कंपनियों को यह ध्यान नहीं है कि वे भारत की गरिमापूर्ण सांस्कृतिक परंपराओं की हत्या कर मानव-जाति का कितना अहित कर रही हैं। उनकी आंख केवल अर्थ पर केंद्रित है, अन्यथा हर चीज के विज्ञापन में स्त्रियों के अर्धनग्न चित्र क्यों दिए जाते हैं? केवल स्त्रियों के उपयोग की चीजों पर ही नहीं, पुरुषों और बच्चों के काम में आने वाली वस्तुओं और पत्र-पत्रिकाओं में स्त्री को जिस रूप में विज्ञापित किया जा रहा है, उससे कामुकता नहीं बढ़ेगी, तो और क्या होगा?

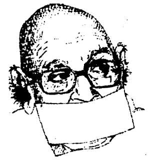

दूरदर्शन की टेक्नोलॉजी का मूलभूत उद्देश्य संचार-व्यवस्था को द्रुतगामी बनाना और मानवीय एवं सांस्कृतिक मूल्यों का प्रसारण करना रहा होगा, पर आज वह कितनी विकृतियों को जन्म दे रही है, किसी से अज्ञात नहीं है। नए-नए चैनल, नए-नए धारावाहिक और नए-नए विज्ञापन। लगता है, इस महामाया ने मनुष्य की जीवनशैली को ही अस्त-व्यस्त कर दिया। दूरदर्शन पर जब नए-नए चेहरे सामने आते हैं, महिलाएं रसोईघर का काम भूल जाती हैं और बच्चे होमवर्क को भूल जाते हैं। स्वाध्याय, ध्यान जैसी संप्रवृत्तियों की तो बात ही क्या, दिनचर्या के आवश्यक काम ही छूट जाते हैं और अतिथियों की उपेक्षा होती है।

सिनेमा का इतिहास अधिक से अधिक सौ साल पुराना है। सन् 1895 में फ्रांस के लुनिएर बंधुओं ने पहली बार इस नई कलाविधा को जन्म दिया। प्रसिद्ध उपन्यासकार मैक्सिम गोर्की ने इस विधा की क्षमताओं और इसमें संभावित विकृतियों की कल्पना पहले ही कर ली थी। यदि सिनेमा को ज्ञानवर्धन और मनोरंजन के साधन तक सीमित रखा जाता तो, संभवतः इस पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं लगता, पर जब से इस कला का व्यावसायीकरण हुआ, इसमें विकृतियों का प्रवेश शुरू हो गया। जो फिल्म उद्योग मनुष्यता की खोज और पहचान में सहायक बन सकता था, वह अपराध और अश्लीलता का प्रेरणास्रोत बन गया।

सिनेमा जगत की उच्छृंखल प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने के लिए सेंसर बोर्ड बना। आज जितनी फिल्में पर्दे पर आती हैं, उनको सेंसर बोर्ड की नजरों से निकलकर ही आना पड़ता है। इस व्यवस्था के बावजूद फिल्मों के गीतों और संवादों में आज जैसी सामग्री आ रही है, वह लज्जा को भी लज्जित करने वाली है। सेंसर बोर्ड की कैंची ऐसे प्रसंगों में क्यों नहीं चलती? यह एक चुनौतीभरा सवाल है। इसका सामना कलाकार, साहित्यकार, निर्माता, निर्देशक, सरकार और जनता सब मिलकर करेंगे, तभी कोई समाधान निकल सकेगा।

दोराहे पर खड़ी पीढ़ियां

इस युग की युवा और किशोर-पीढ़ी संशय के दोराहे पर खड़ी है। एक ओर विलासिता और सुविधावाद का आकर्षण, दूसरी ओर सांस्कृतिक एवं पारंपरिक मूल्यों की चरमराहट। कभी वह आकर्षण से बंधकर उस रास्ते पर आगे बढ़ना चाहती है और कभी मूल्यों की चरमराहट से परेशान हो पीछे लौटना चाहती है। एक अजीब-सी कश-मकश की स्थिति है। इस स्थिति में उन हजारों-हजारों युवकों और किशोरों पर गौरव है, जो आज भी अपने मन पर लगाम रखे हुए हैं। अश्लीलता के माहौल में रहकर भी उससे अप्रभावित हैं। अनुस्रोत में बहते हुए लोगों की भीड़ में खड़े रहकर भी प्रतिस्रोत की दिशा में आगे बढ़ने के लिए कटिबद्ध हैं। ऐसे व्यक्तियों पर हमारी संस्कृति को नाज है, परंपरा को नाज है और उन मूल्यों को नाज है, जो आज क्षरण की कगार पर पहुंच चुके हैं।

अणुव्रत : एक अभियान

अणुव्रत राष्ट्रीय चरित्र निर्माण के लिए चलाया जा रहा एक अभियान है। उसकी आस्था दण्ड और कानून में नहीं, हृदय-परिवर्तन में है। फिर भी यह मानता है कि केवल हृदय-परिवर्तन के द्वारा सामाजिक विसंगतियों को दूर नहीं किया जा सकता। इसके लिए व्यवस्था परिवर्तन भी आवश्यक है। मनुष्य का मन भी बदले और व्यवस्था भी बदले, तो कठिन-से-कठिन प्रतीत होने वाले काम को सरलता से किया जा सकता है। ❑

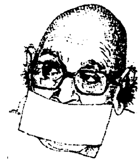

व्यवसाय-जगत की बीमारी : मिलावट

व्यवसाय-जगत की एक बड़ी बीमारी है—मिलावट। पता नहीं, यह दूसरे देशों में है या नहीं, और है तो इसका स्वरूप क्या है? भारतीय व्यापारी के लिए यह साधारण बात है। मिलावट का अर्थ है—मिश्रण। जिस वस्तु के मिश्रण से कोई रसायन पैदा हो, वस्तु की गुणात्मकता बढ़े तो मिश्रण करने का फायदा है। आयुर्वेद में अनेक औषधियां अनेक मिश्रण से तैयार होती हैं। इससे उनकी रोगशमन की क्षमता बढ़ती है। ऐसी मिलावट अवांछनीय नहीं होती।

जिस वस्तु के मिश्रण से मूल वस्तु का स्वरूप विकृत हो जाए, उसकी गुणात्मक शक्ति कम हो जाए, ऐसी मिलावट करने का भी कोई अर्थ है, समझ में नहीं आता। संभवत: मिलावट की मनोवृत्ति के पीछे आर्थिक लाभ का दृष्टिकोण ही प्रमुख होगा। किसी भी व्यक्ति की मानसिकता जब अर्थप्रधान हो जाती है, तब वह उचित—अनुचित का विवेक किए बिना अपने ही भाइयों की जान से खेलने लगता है।

मिलावट के कारण समाज और राष्ट्र का कितना अहित होता है, इस प्रश्न पर गंभीरता से सोचे बिना जो लोग ऐसा जघन्य काम करते हैं, वे सामाजिक, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक मूल्यों की हत्या करते हैं। मिलावट करने वाले लोग समाज और राष्ट्र के अपराधी तो हैं ही, यदि वे ईश्वरवादी हैं तो भगवान के भी अपराधी हैं।

मिलावट एक ऐसा अपराध है, जिसे कभी बख्शा नहीं जा सकता, क्योंकि इससे नैतिक और आध्यात्मिक बल का पतन होता है। जिस समाज या राष्ट्र का नैतिक बल क्षीण हो जाता है, वह कभी सर्वांगीण विकास नहीं कर सकता। यदि व्यक्ति के मन में धर्म या चरित्र के प्रति थोड़ी भी आस्था है, वह जीवन के शाश्वत मूल्यों की उपेक्षा नहीं कर सकता। मिलावट एक ऐसी छेनी है, जो आदर्श की प्रतिमा को खंड-खंड कर खंडहर में बदल देती है। आश्चर्य इस बात का है कि भारतीय लोग अपने देश में उपजी इस मानसिकता से केवल यहीं पर लाभ नहीं उठाते, वे इसका निर्यात करने से भी नहीं चूकते।

मिलावट-विरोधी इतने अभियानों के बावजूद मूल स्थिति में कोई अंतर नहीं आया है। यह अंतर तब तक नहीं आएगा, जब तक देश की आस्था नहीं बदलेगी।

सबसे बड़ा आश्चर्य तो यह है कि ऐसा काम वे करते हैं, जो धार्मिक कहलाते हैं। मैं नहीं समझता कि ऐसी धार्मिकता से किसी का कल्याण हो सकेगा। प्रतिदिन मंदिर जाना, पूजा करना, उपवास करना आदि उपासना-प्रधान धर्म में गहरी आस्था होने पर भी प्रामाणिकता, नैतिकता और चरित्रमूलक धर्म का आचरण नहीं है तो वह व्यक्ति अपने आपको धार्मिक कैसे मान सकता है?

अणुव्रत एक चरित्रमूलक आंदोलन है, अणुव्रती व्यक्ति का यह संकल्प होता है कि वह किसी प्रकार की मिलावट नहीं करेगा, क्योंकि यह मनुष्य पर मनुष्य के विश्वास की हत्या है। देश के करोड़ों-करोड़ों व्यक्ति इस संकल्प को स्वीकार करेंगे, तभी व्यवसाय-जगत की इस संक्रामक बीमारी का पत्ता साफ हो सकेगा। ❑

संस्कृति की अस्मिता पर प्रश्नचिह्न

इधर कुछ वर्षों से आधुनिकता के नाम पर अनेक संस्कृतियों का मिश्रण हो रहा है। मिश्रण की यह प्रवृत्ति अन्य देशों की अपेक्षा हिंदुस्तान में कुछ अधिक है, ऐसी प्रतीति होती है। जैन संस्कृति में वैदिक संस्कृति का घोल इतना घुल गया है कि उसे वहां से अलग करने में कठिनाई का अनुभव होता है। अस्तित्व की सुरक्षा के नाम पर यह सब कुछ हुआ, पर अब हिंदुस्तानी लोगों के सामने ऐसी कौन-सी विवशता है, जिसके कारण उन्हें अन्य संस्कृतियों के खान-पान, रहन-सहन और तौर-तरीके स्वीकार करने पड़ रहे हैं?

आज हमारे देश के गांवों पर महानगरीय संस्कृति थोपी जा रही है और महानगरों में आयातित संस्कृति का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। आर्थिक होड़ में मानवीय मूल्य बिखरते जा रहे हैं और वैचारिक स्वतन्त्रता के नाम पर सामाजिक ढांचा चरमरा रहा है। ऊपर से मुसकान का मुखौटा पहन कर व्यक्ति अपने सुख और आनंद का प्रदर्शन करना चाहता है। भीतर ही भीतर मन को तोड़ने वाले प्रसंग और उनकी स्मृतियों के दुःखद दंश पीड़ा पहुंचाते रहते हैं। अपने आप में सिमटने की मनोवृत्ति से बिखरते हुए परिवार जीवन को अनिश्चितता की ओर धकेल रहे हैं। सांस्कृतिक मूल्यों के बदलते तेवर संस्कृति की अस्मिता के सामने प्रश्नचिह्न बन कर खड़े हो रहे हैं।

उदाहरण के रूप में 'जन्मदिन' मनाने की प्रवृत्ति और उसकी पद्धति पर विचार किया जा सकता है। एक समय था, हमारे देश में बड़े लोगों के जन्मदिन मनाए जाते थे। बच्चों के जन्मदिन मनाने का विशेष प्रचलन नहीं था। विगत कुछ दशकों से अधिकांश माता-पिता अपने बच्चों का जन्मदिन मनाने लगे हैं। पारिवारिक उल्लास की दृष्टि से इसके औचित्य पर कोई टिप्पणी आवश्यक नहीं है, किंतु आज उसका जो स्वरूप है, वह जैन और वैदिक संस्कृति पर सीधा कुठाराघात है।

पहली बात है भाषा की। लाइफ स्टैंडर्ड के नाम पर अंग्रेजी भाषा को महत्व देना, अपनी मातृभाषा को उपेक्षित करना है। लाखों बच्चे ऐसे हैं, जो जन्मदिन बोलना नहीं जानते, पर 'हैप्पी बर्थ डे' धड़ल्ले से बोलते हैं। जन्मदिन पर जो उत्सव समायोजित होता है, उसमें केक बनाना या खरीदना, उस पर मोमबत्तियां जलाना और बुझाना, केक काटना आदि प्रवृत्तियां किस संस्कृति की प्रतीक है? क्या जैन-शास्त्र में ऐसा उल्लेख हुआ है? क्या सनातन धर्म के किसी भी ग्रंथ में ऐसी पद्धति की चर्चा है? नहीं, तो फिर इस आयातित संस्कृति को अपनाने और पनपाने में आपका मुक्त योगदान क्यों हो?

क्या जैनों की या भारतीयों की अपनी कोई संस्कृति या परंपरा नहीं है जो संस्कृतियों के मिश्रण के इस प्रवाह को देखकर भी अनदेखा किया जा रहा है? समाज में स्वस्थ मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए उन लोगों को सतत जागरूक रहना है। जिन्हें अपनी सभ्यता और संस्कृति की थोड़ी भी चिंता है वे लोग समाज के सामने ऐसे विकल्प प्रस्तुत करें ताकि प्रवाहपाती लोगों का ध्यान उधर केंद्रित किया जा सके। ❑

दूरदर्शन की संस्कृति

भारत की बीसवीं सदी का बुढ़ापा एक ओर खून से सना हुआ है तो दूसरी ओर दूरदर्शन, कम्प्यूटर, उपग्रह आदि उपलब्धियों से भरा हुआ है। एक ओर मनुष्य में असुरक्षा के भाव पनप रहे हैं तो दूसरी ओर उसे प्राप्त सुविधाएं बढ़ती जा रही है। इस दोहरी मानसिकता में मनुष्य अपने आपको भूल रहा है और वैज्ञानिक उपकरणों की दासता स्वीकार कर रहा है। इन उपकरणों में एक लोकप्रिय उपकरण है दूरदर्शन। सन् 1944 में दूरदर्शन के आविष्कर्ता जे.एल. बेअर्ड ने इसको ज्ञान विज्ञान और मनोरंजन के साधन के रूप में विकसित किया होगा, पर इसके निर्माताओं ने गुण-दोष की समीक्षा किए बिना इसको जितना विस्तार दिया है, इसकी उपयोगिता के आगे कुछ प्रश्नचिह्न लग गए हैं।

गांधी शांति प्रतिष्ठान के मुखपत्र गांधी मार्ग ने जून 1986 के अंक में वी.सी. गिडवानी के एक लेख का सारांश प्रकाशित किया है। उसमें दूरदर्शन संस्कृति की अच्छी शल्य-चिकित्सा की गई है। उस लेख को पढ़ने के बाद व्यक्ति की अवधारणाओं में सहज ही बदलाव आ सकता है। गिडवानीजी ने इस संदर्भ में हुए कुछ प्रयोगों के आधार पर अपने पाठकों को दूरदर्शन से होने वाले खतरों के प्रति सचेत किया है। उनके द्वारा दी गई सूचनाओं के आधार पर यहां कुछ तथ्यों का आकलन किया जा रहा है।

डॉ. एन.विग्मोर के अनुसार कई वैज्ञानिकों ने कहा कि दूरदर्शन का संचालन एक्स-रे की किरणों द्वारा होता है। इन किरणों से मनुष्य शरीर में कैंसर होने की संभावना है। डॉक्टर भी एक्स-रे यंत्रों का उपयोग करते हैं, पर उसमें सुरक्षा की जो व्यवस्था होती है, वह दूरदर्शन सेट में नहीं होती।

डॉ. एमिल ग्रुब्बे विकिरणशास्त्र के विशेषज्ञ थे। उन्होंने अपने निधन से कुछ समय पहले कहा–'प्रत्येक घर के दूरदर्शन सेट में से निकलने वाली घातक किरणें हमारी बाट देख रही हैं।'

डॉ. एच.पी शोएन ने एक गर्भवती कुतिया पर महीनों तक दूरदर्शन की किरणें पड़ने दीं। कुतिया ने चार पिल्लों को जन्म दिया। उन चारों को लकवा था और उनमें से तीन अंधे थे।

अध्यापक जॉन मैकडॉनल्ड ने एक तोते को उस कमरे में रखा, जिसमें घण्टों तक दूरदर्शन चलता था। कई दिनों बाद उस नर तोते ने पिंजरे में तीन अण्डे दिए। दूरदर्शन की एक्स-रे किरणों ने नर को मादा बना दिया।

एक अन्य व्यक्ति ने दो तोते पाले। उसके पिंजरे को दूरदर्शन सेट पर रखा जाता । परिणाम यह आया कि उनके पांव खराब हो गए और उन्हें कटवाना पड़ा।

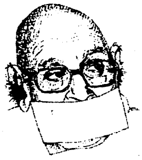

डॉ. विग्मोर का कहना है कि बालकों में रक्त कैंसर की जो बीमारी फैली है, उसका मुख्य कारण दूरदर्शन की किरणों का प्रभाव है। सामान्यत: दूरदर्शन से आठ फुट दूर बैठकर उसे देखने की व्यवस्था है, जबकि अधिकतर बच्चों को उसके काफी निकट बैठते देखा जाता है। विग्मोर के अनुसार अमेरिका के बोस्टन शहर के एक ही अस्पताल में असाध्य रक्त कैंसर से पीड़ित छ: सौ बालक हैं। एरीजोना राज्य के टकसन नगर और उसके पार्श्ववर्ती क्षेत्र में पचीस सौ बच्चे रक्त कैंसर से पीड़ित हैं।

उक्त प्रकार की खोजों और प्रयोगों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लगभग सभी इलेक्ट्रोनिक उपकरणों के विकिरण शरीरगत कोशों के लिए हानिकारक हैं। दूरदर्शन सेट में तो तीव्र गति वाले इलेक्ट्रोन स्क्रीन पर टकराते हैं। टकराहट के कारण वे चारों ओर दूर-दूर तक फैल जाते हैं। इससे दूरदर्शन नहीं देखने वाले दूर बैठे व्यक्ति भी प्रभावित हो सकते हैं। इन विकिरणों से होने वाले खतरों में कैंसर, अंधापन, पक्षाघात, पाचनतंत्र की गड़बड़ी, किसी भी अंग की विकृति और मृत्यु तक सम्मिलित है। इनका दुष्प्रभाव केवल वर्तमान तक ही सीमित नहीं है, आने वाली कई पीढ़ियां इसकी शिकार हो सकती हैं।

डी.ई वार्न्स और डेबिस टेयलरे ने विकिरण के खतरों की चर्चा करते हुए लिखा है कि स्त्री और पुरुष में वंश-वृद्धि करने वाले जो कोश हैं, उनमें चौबीस-चौबीस क्रोमोसोम होते हैं। प्रत्येक क्रामोसोम में हजारों जीन्स होते हैं। जीन्स पर एक्स-रे किरणों के पड़ने से उनसे उत्पन होने वाले बच्चे अल्पायु होंगे अथवा वे संतानोत्पत्ति की अपनी क्षमता खो बैठेंगे।

इस वैज्ञानिक चर्चा के बाद व्यवस्था के धरातल पर सोचा जाए तो भी लाभ की अपेक्षा हानि की संभावना अधिक है। इसमें एक बिंदु है विज्ञापन। दूरदर्शन के दर्शकों की यह प्रतिक्रिया है कि विज्ञापन शिक्षा का नहीं, आमदनी का साधन है। एक ओर धूम्रपान से बढ़ रहे खतरे, दूसरी ओर सिगरेट का विज्ञापन। कहने को तो यह कहा जाता है कि 'चुनौती' नामक सीरियल में ड्रग्स से होने वाले दुष्परिणामों की चर्चा है, पर उसे देखकर ड्रग्स छोड़ने वाले कितने हुए? और उनका प्रयोग करने वाले कितने हुए? यह सर्वे किया जाए तब पता चले। ज्ञात हुआ है कि अनेक किशोर, जो नशीली चीजों के नाम ही नहीं जानते थे, दूरदर्शन देखकर उनका प्रयोग करने लगे हैं।

यह मानवीय दुर्बलता है कि मनुष्य किसी भी घटना के अच्छे पक्ष को कम पकड़ता है और गलत प्रवाह में अधिक बहता है। बच्चे तो इतने नासमझ होते हैं कि वे विज्ञापन में देखी हुई हर चीज की मांग कर बैठते हैं। खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने अथवा किसी अन्य काम में आने वाली नई चीज का विज्ञापन देखते ही वे उसे पाने के लिए मचल उठते हैं। ऐसी स्थिति में माता-पिता के लिए समस्या खड़ी हो जाती है।

वीसीआर ने तो और भी गजब ढा दिया। पांच-दस रुपए देकर कोई भी कैसेट किराये पर लाना और दिनभर उन्हीं को देखना। औचित्य का ध्यान दिए बिना सब प्रकार की फिल्मों को लाना और बाल-बच्चों के साथ बैठकर देखना, इससे बड़े-छोटे का लिहाज सुरक्षित कैसे रहेगा?

घर में दूरदर्शन या वीडियो चलता हो तो न खाना बनाने की सुध रहती है और न खाने की। इससे आपसी रिश्तों में भी दरार पड़ सकती है, क्योंकि उन्हें देखते समय किसी का घर आना और उसके साथ बात करना भी अच्छा नहीं लगता। इस दूरदर्शन की संस्कृति पर एक गंभीर समीक्षा की अपेक्षा है। प्रबुद्ध एवं तटस्थ समीक्षक इस विषय पर ध्यान दें तो जनता को सही पथदर्शन मिल सकता है। ❑

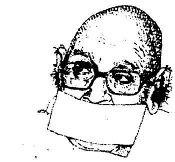

चिंतन खान-पान की संस्कृति का

संस्कृति जीवन का अविभाज्य अंग है। संस्कृति का विकास समाज का विकास है। सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर व्यक्ति, समाज या राष्ट्र की पहचान होती है। खान-पान की भी एक संस्कृति है। इसका संबंध धार्मिक संस्कारों के साथ भी है। भारत में चल रहे अनेक धर्म खान-पान की शुद्धि पर विशेष बल देते हैं। खान-पान की शुद्धि से उनका अभिप्राय है मांसाहार और मद्यपान का वर्जन। शारीरिक, मानसिक और धार्मिक—सभी दृष्टियों से ऐसा आहार और पेय वर्जित है। इस वर्जना के बावजूद आज की युवापीढ़ी का झुकाव शराब और अण्डे की तरफ हो रहा है। यह एक विचारणीय पहलू है।

मांसाहार अप्राकृतिक भोजन है। मनुष्य की शरीर-संरचना इस आहार के अनुकूल नहीं है। धार्मिक ग्रंथों में ऐसे आहार की गणना तामसिक आहार में की गई है। यह उत्तेजक होने के साथ-साथ अनेक बीमारियों का घर होता है। इंग्लैंड के प्रोफेसर हेगे के अनुसार मांस और अण्डे में यूरिक एसिड होता है। उससे गठिया, लकवा, श्वास, अनिद्रा, मधुमेह, जलोदर, हिस्टीरिया, सिरदर्द आदि अनेक प्रकार की बीमारियां हो जाती हैं। मद्यपान करने से लिवर खोखला हो जाता है, पेट बाहर आ जाता है, मस्तिष्क विकृत हो जाता है, स्मृति क्षीण हो जाती है और भी कई विकृतियां शुरू हो जाती है। आश्चर्य तो इस बात का है कि बियर आदि हलकी शराब पीने वाले यह मानते ही नहीं कि वे मद्यपान कर रहे हैं। कई बड़े शहरों में किशोर से युवा हो रही पीढ़ी इस विचारधारा से आक्रांत हो रही है।

मांस और मद्य की ऐसी निष्पत्तियों को पढ़-सुनकर भी कुछ लोग इनसे विरत नहीं होते। कुछ व्यक्ति नए सिरे से इनके आदी हो जाते हैं। इनमें एक बड़ा कारण है टेलीविजन पर इनका अंधाधुंध प्रचार। एक ओर किसी धार्मिक मान्यता से असम्मत महापुरुष का चरित्र भी यदि बच्चों को पढ़ाया जाता है तो उसका तीव्र विरोध किया जाता है, जबकि वैसा उदात्त चरित्र तो जीवन में नई प्रेरणा भरने वाला होता है। दूसरी ओर अनेक धर्मों की पवित्र परंपरा के साथ खिलवाड़ करने वाली यह विज्ञापन की संस्कृति है। क्या इससे किसी के धार्मिक विश्वासों पर आघात नहीं होता? जिन लोगों की धार्मिक परंपरा अपने अनुयायियों को ऐसा करने की छूट देती है, वे भी गुण-दोष के आधार पर ऐसे संदर्भों में विचार करें।

टी.वी की तरह समाचारपत्रों में भी विज्ञापन की संस्कृति फलफूल रही है। आधे-आधे पृष्ठों में दिए गए विज्ञापन 'सण्डे हो चाहे मण्डे, रोज चलेंगे अण्डे' किस विकृत दिमाग की उपज हैं? क्या ऐसे विज्ञापन बच्चों को गुमराह नहीं कर रहे? इन वर्षों में समाज के बच्चे केक, पेस्ट्री आदि अण्डा मिश्रित खाद्य पदार्थों से परहेज नहीं करते। उनके अभिभावक भी इस विषय में सचेत नहीं हैं। यही कारण है, खान-पान संबंधी सांस्कृतिक मूल्य चरमरा रहे हैं।

समाज की युवापीढ़ी अपने सांस्कृतिक मूल्यों की सुरक्षा के लिए एक जागरूक प्रस्थान करे और मांसाहार एवं मद्यपान के विरोध में सामूहिक स्वर उठाए तो इस प्रवाहपातिता को रोका जा सकता है। ❐

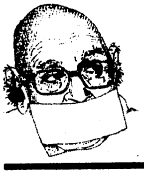

सामाजिक परिवेश स्वस्थ बने

शादी-विवाह, जन्मदिन, तीज-त्योहार आदि ऐसे सामाजिक पर्व हैं, जिनमें परिजनों, परिचितों, मित्रों और साथियों का सहज सम्मिलन होता है। ऐसे अवसरों पर सामूहिक आमोद-प्रमोद को रोकना संभव नहीं है, किंतु वृहद भोज को रोका जा सकता है, बहुत ऊंची क्वालिटी की मिठाइयों पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है, अनेक प्रकार की वैरायटीज को नियंत्रित किया जा सकता है, बरातियों की संख्या को सीमित किया जा सकता है।

विवाह के प्रसंग में दहेज की मांग, ठहराव और प्रदर्शन की बात से ऊपर उठकर मानवीय आदर्श स्थापित किया जा सकता है। यद्यपि मेरा सपना तो इससे बहुत बड़ा है। मैं चाहता हूं कि हमारे समाज में सैकड़ों-हजारों दंपती खड़े हों, जो दहेज को किसी रूप में स्वीकार न करें। इस वर्ष कई दंपतियों ने ऐसा संकल्प स्वीकार किया है।

आजकल यत्र-तत्र सामूहिक विवाह की चर्चा सुनने में आती है। यह भी कहा जाता है कि बहुत ही कम समय में अत्यंत सादगी के साथ ये विवाह संपन्न हो जाते हैं। संयम और सादगी को प्रायोगिक रूप देने की दृष्टि से किए गए उपाय कभी-कभी बड़ी समस्या का समाधान बन जाते हैं।

नामकरण, टीका, मायरा, होली, दीवाली आदि विशेष अवसरों पर सादगी रखने तथा मृत्युभोज जैसी सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने के लिए भी यह एक उपयुक्त अवसर है।

इस वर्ष दुष्काल में सबसे बड़ी समस्या है पानी की। एक ओर पीने के बूंद-बूंद पानी की प्रतीक्षा, दूसरी ओर नहाने-धोने में पानी का मुक्त अपव्यय। यह क्रम जैनत्व की दृष्टि से सर्वथा विपरीत है। देश के प्रत्येक नागरिक का दायित्व है कि वह पानी के उपयोग में संयम बरते। इससे दो लाभ होंगे—धार्मिकता की वृद्धि और पानी के अपव्यय पर रोक।

परिवार समूह-चेतना का प्रतीक है। उसमें दो-चार व्यक्तियों की विवेक चेतना का जागरण पूरे समूह में नई जागृति भर सकता है। पारिवारिक आमोद-प्रमोद एवं मिलन-प्रसंगों को भारी न बनाया जाए। परिवार के एक-एक व्यक्ति में संयम एवं सादगी के संस्कार भरे जाएं और यह आस्था दृढ़ की जाए कि वर्तमान समस्या का मुकाबला असंयम से कभी संभव नहीं है। ❑

जीवनशैली की विसंगतियां दूर हों

आज के कुछ ज्वलंत सवाल हैं। एक सवाल लाइफ स्टाइल अर्थात् जीवनशैली का है। आज वैश्विक स्तर पर जीवनशैली के बारे में चिंतन किया जा रहा है। इस चर्चा के केंद्र में खड़ा है एक मात्र मनुष्य। पशु, पक्षी या किसी अन्य प्राणी की जीवनशैली पर कोई प्रश्नचिह्न नहीं है, क्योंकि उसमें समयविशेष के कारण किसी विसंगति की प्रतीति नहीं होती। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है। उसके पास सर्वाधिक विकसित मस्तिष्क है। वह अतीत की स्मृति और भविष्य की कल्पनाओं के आधार पर अपने वर्तमान को बनाता है। फिर भी उसका जीवन अनेक प्रकार की विसंगतियों से भरा हुआ है। वह जी रहा है, पर जीने के तौर तरीके इतने बदल गए हैं कि उनमें बदलाव को अपरिहार्य माना जा रहा है। जीवनशैली को व्यवस्थित करने की दृष्टि से अपेक्षित विचारयात्रा पर निकलने से पहले यह जानना भी जरूरी है कि जीवन क्या है?

जन्म और मृत्यु—इन दो तटों के बीच बहनेवाली धारा का नाम जीवन है। यह जीवन की स्थूल परिभाषा है। दार्शनिक धरातल पर चिंतन करनेवालों ने शरीर, इंद्रिय, मन, प्राण, भाव, चित्त और चेतना की युति को जीवन माना है। जीवन चलाने के लिए भोजन, वस्त्र, मकान आदि साधन-सामग्री की अपेक्षा होती है, पर वह जीवन की मंजिल नहीं है। भौतिक दृष्टिकोणवाले व्यक्ति खाने-पीने और मौज-मस्ती करने में ही जीवन की सार्थकता देखते हैं। समाजशास्त्र को प्रमाण मानकर चलने वाले लोग समाज-सेवा में निरत जीवन की श्रेष्ठता स्वीकार करते हैं। वैज्ञानिक या दार्शनिक प्रकृति के व्यक्ति अपना जीवन सत्य की खोज में समर्पित कर देते हैं। कुछ लोग अध्यात्म में रुचि रखते हैं। वे जीवन की पवित्रता में विश्वास करते हैं। जीवन के इस चौराहे पर खड़े व्यक्तियों को किसी भी समय दिशाभ्रम हो सकता है, यदि उन्हें जीवनशैली का सम्यक् बोध न हो।

मनुष्य की जीवनशैली पर उसकी सभ्यता, संस्कृति, परंपरा, वातावरण आदि का भी प्रभाव होता है। भोगप्रधान जीवनशैली समस्याओं की सर्जक होती है। उसमें हिंसा, क्रूरता, शोषण, आक्रमण, धोखाधड़ी, चोरी, कामुकता, संग्रहवृत्ति, नशा, दुर्व्यसन, अपव्यय आदि अवांछनीय तत्त्वों की प्रधानता रहती है। इनके आधार पर जीवन-यापन करनेवालों की जीवनशैली अच्छी नहीं हो सकती। अच्छी जीवनशैली वह है, जिसमें संयम की प्रधानता हो। संयम के परिपार्श्व में करुणा, मैत्री, सहिष्णुता, सहयोगभावना, नीतिनिष्ठा, परोपकार, आत्मानुशासन, व्यसनमुक्ति, मितव्ययिता, कर्तव्यनिष्ठा, व्यवस्था के प्रति जागरूकता, विनम्रता आदि मूल्यों को आत्मसात करने का लक्ष्य होता है। मूल्यों पर आधारित जीवनशैली का प्रशिक्षण शिक्षा के साथ दिया जा सके तो वह अधिक प्रभावशाली हो सकता है।

स्वस्थ और समुन्नत जीवनशैली का प्रारूप प्रस्तुत करने के लिए मैंने एक नवआयामी कार्यक्रम प्रस्तुत

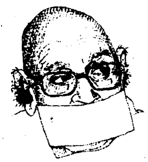

किया है—(1) सम्यक् दृष्टिकोण, (2) अनेकांत, (3) अहिंसा, (4) समण संस्कृति (सम, शम और श्रम), (5) इच्छापरिमाण, (6) सम्यक् आजीविका, (7) सम्यक् संस्कार, (8) आहारशुद्धि एवं व्यसनमुक्ति और, (9) साधर्मिक वात्सल्य—भाईचारे की भावना—इन नौ सूत्रों को सामने रखकर जीवनशैली में आमूलचूल परिवर्तन किया जा सकता है। ये ऐसे सूत्र हैं, जिनका अभ्यास करने में जाति, संप्रदाय, प्रांत, राष्ट्र, भाषा, वेश-भूषा आदि की कोई बाधा नहीं है। मानवीय धरातल पर इसका मूल्यांकन किया जाए और इस जीवनशैली को जन-जन की जीवनशैली बनाया जा सके तो अनेक समस्याओं से छुटकारा मिल सकता है।

गृहस्थ जीवन जीनेवाला व्यक्ति अर्थ, भोग, संग्रह और सुविधा का संपूर्ण रूप में त्याग नहीं कर सकता, क्योंकि इसके बिना जीवन नहीं चलता, पर इनको ही सब कुछ मानने का मनोभाव व्यक्ति को भटका देता है। अणुव्रत की मशाल हाथ में रहे तो भटकने के बाद भी सही रास्ता मिल सकता है। प्रेक्षाध्यान का अभ्यास चलता रहे तो अणुव्रत के मूल्य सहज रूप में जीवन के साथ जुड़ सकते हैं।

'जब जागे तभी सवेरा'—इस जनश्रुति का आलंबन लेकन जीवनशैली के बदलाव की दिशा में व्यापक प्रयास किया जाए तो आज भी नई क्रांति घटित हो सकती है। शिक्षा की तरह जीवनशैली में भी अब नवाचार की जरूरत है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान और जीवनशैली—इस त्रिपुटी का सक्रिय प्रशिक्षण इस जरूरत की संपूर्ति कर सकता है। अणुव्रत जीवनशैली की बुनियाद है। प्रेक्षाध्यान उस बुनियाद पर जीवनमूल्यों का प्रासाद खड़ा कर देता है और जीवनविज्ञान बचपन से ही सही जीवनशैली के प्रायोगिक अभ्यास की प्रक्रिया है। ❑

घर–परिवार और मित्र–परिजनों के यहां खुशी के अवसरों पर **'जैन भारती'** उपहार के रूप में एक वर्ष, तीन वर्ष या दस वर्ष तक भिजवाकर आप आध्यात्मिक–नैतिक मूल्यों के विकास में योगदान दे सकते हैं। जन्म–दिन का उपहार हो या कोई अन्य अवसर, **'जैन भारती'** अनुपम उपहार के रूप में भेंट के लिए हमें लिखें। आपकी ओर से हम यह कार्य करेंगे।

जैन भारती

एक संपूर्ण पत्रिका है।

वैचारिक उन्मेष और परिष्कृत रंजन के लिए

जैन भारती

पढ़ें—सबको पढ़ाएं

व्यवस्थापक

जैन भारती

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401

समाधान मिलेगा प्रायोगिक धर्म से

इस युग का आदमी एक तर्क उठाता है कि देश में इतने धर्म हैं, धर्मस्थान हैं, धर्मग्रंथ हैं, धर्म के अनुष्ठान हैं, धर्म के प्रवक्ता हैं और धर्मगुरु हैं, फिर भी मनुष्य में कहीं कोई परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता। तर्क बिलकुल सही है। धर्म हो और परिवर्तन न हो, यह बात समझ में आने जैसी है भी नहीं। इसका अर्थ तो यह होता है कि भोजन किया, पर भूख शांत नहीं हुई। पानी पीया, किंतु प्यास नहीं बुझी, औषधि का सेवन किया, पर बीमारी से छुटकारा नहीं मिला। भोजन, पानी और औषधि का असर है तो धर्म का असर भी होना चाहिए, अन्यथा यह समझना चाहिए कि धर्म के नाम पर और ही कुछ चल रहा है।

जो धर्म जीवन को परिवर्तन की दिशा नहीं देता, जिस धर्म से जीवन पवित्र नहीं होता, जो धर्म मनुष्य के व्यवहार में जीवंत नहीं होता, वह धर्म नहीं, संप्रदाय है, क्रियाकाण्ड है, उपासना है और परंपरा है। जीवन में धर्म ही सर्वोपरि महत्त्वपूर्ण है, इस आस्था का निर्माण होने से ही व्यक्ति सीधा धर्म के साथ जुड़ सकता है। धर्म विश्वास की शक्ति का अक्षय स्रोत है, पर वह सुनने, पढ़ने या बोलने का नहीं, जीने का तत्त्व है। समस्या एक ही है कि मनुष्य धर्म को सुनता है, पढ़ता है, बोलता है, पर जीता नहीं। जीए बिना धर्म करेगा भी क्या?

जो धर्म केवल सुनने और पढ़ने तक ही सीमित है, उसका जीवन पर प्रभाव कैसे होगा? जब तक धर्म समस्या के समाधान में सक्रिय नहीं होता है, वह लोकग्राही भी नहीं बन सकता। हमने इन वर्षों में धर्म को बहुत गंभीरता से जाना है, देखा है और उसे प्रायोगिक रूप देने का प्रयत्न किया है। आज के इस वैज्ञानिक युग में केवल देखने और सुनने से किसी तत्त्व के प्रति आकर्षण नहीं हो सकता। आकर्षण उसी तत्त्व के प्रति होता है, जो प्रयोग की कसौटी पर खरा उतरता है। इस युग में यदि धर्म प्रायोगिक नहीं बनेगा तो वह औरों का तो क्या हित करेगा, स्वयं के अस्तित्व को बनाए रखने में भी सक्षम नहीं हो सकेगा।

आज भारत राष्ट्र के सामने जो समस्याएं हैं, उनके मूल की खोज की जाए तो लगता है जीवन के प्रति सही दृष्टिकोण का अभाव, आत्म-नियंत्रण की क्षमता की कमी, स्वच्छंद मनोवृत्ति, असंयम, बढ़ती हुई आकांक्षाएं आदि-आदि ऐसे कारण हैं, जो देश को समस्याओं की धधकती आग में झोंक रहे हैं। इन सबमें परिवर्तन की कोई संभावना है तो प्रायोगिक धर्म के द्वारा ही है। प्रायोगिक धर्म सबसे पहले व्यक्ति के दृष्टिकोण को सही बनाता है। दृष्टि सही होने के बाद आदमी का जीने का लक्ष्य बदल जाता है। सही लक्ष्य से प्रतिबद्ध लोकचेतना उन सब विकृतियों का दृढ़ता से मुकाबला कर सकती है, जिनके कारण राष्ट्र के सामने समस्याएं खड़ी होती हैं। प्रायोगिक धर्म के द्वारा वैयक्तिक और सामूहिक सभी प्रकार की समस्याओं को छुट्टी दी जा सकती है, बशर्ते कि धर्म का सही मूल्यांकन हो, सही प्रशिक्षण हो और सही प्रयोग हो।

आज अधर्म (हिंसा) सिखाने के लिए समूचे संसार में जितनी शक्ति लग रही है, उसका छोटा-सा हिस्सा भी यदि धर्म (अहिंसा) के लिए लगाया जाए तो उसके अद्भुत परिणाम आ सकते हैं। हिंसा को शक्ति-संपन्न बनाने के लिए समय लगता है, श्रम लगता है, अर्थ लगता है और बुद्धि लगती है। उसके परिणाम

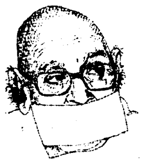

हैं—आशंका, भय और निराशा। अब तक कितने युद्ध हो गए, विश्वयुद्ध हो गए, क्या उनका कोई सुंदर परिणाम आया है? अब तो अणुयुद्ध और अंतरिक्ष युद्ध की तैयारियां हो रही हैं। उससे क्या होने वाला है? मानव-जाति का सर्वनाश करके कौन राष्ट्र बच सकेगा? क्षण-क्षण प्रलय की संभावना सिर पर मंडरा रही है। किसी भी समय एक राष्ट्र का संतुलन बिगड़ गया तो वह संसार में कहर ढा देगा। ऐसी स्थिति में अहिंसा के अस्त्र को तीक्ष्ण करने की जरूरत है। कठिनाई एक ही है कि हम धर्म और धार्मिकों पर दोष मढ़ना तो जानते हैं, किंतु उन्हें सक्षम बनाने का तरीका नहीं जानते। पता नहीं संसार की बड़ी शक्तियों को यह क्यों नहीं सूझ रहा है।

जब तक हिंसा के विरोध में अहिंसा की प्रतिष्ठा नहीं होगी, शस्त्र-प्रयोग के स्थान पर शस्त्र-परिज्ञा का प्रयोग नहीं होगा, क्रूरता की तुलना में करुणा का मूल्यांकन नहीं होगा, समस्याओं का ओर-छोर भी दिखाई नहीं देगा। यदि मनुष्य ने हिंसा और शस्त्रों की अंधाधुंध दौड़ के साथ अपनी नियति को जोड़ लिया है, तब तो कुछ कहने, सोचने या करने का प्रश्न ही नहीं उठता, अन्यथा इस बात से कोई इनकार नहीं हो सकता कि आज संसार में सबसे बड़ी समस्या हिंसा और परिग्रह की है। इस समस्या का समाधान अहिंसा और अपरिग्रह में से ही निकल सकता है।

हिंसा और परिग्रह की छाया में जो विकृतियां पनप रही हैं, उनमें सबसे बड़ी विकृति है चारित्रिक भ्रष्टता। इसे दूर करने का सीधा-सा तरीका है—ऊंचे पदों पर बैठे लोगों द्वारा अपने सुधार की शुरुआत। यद्यपि सुधार के क्षेत्र में बड़े-छोटे का कोई भेद नहीं है, पर बड़े कहलानेवाले लोग पहल करें तो उसका व्यापक दृष्टि से अच्छा प्रभाव हो सकता है। उनके द्वारा की जानेवाली पहल स्थायी हो और उसके लिए स्वार्थ का बलिदान भी करना पड़े तो पांव पीछे नहीं हटें। ऐसा होने से ही भ्रष्टाचार की समस्या का हल निकल सकता है और एक नई चारित्रिक आस्था का निर्माण हो सकता है।

देश में गरीबी की समस्या जितनी उलझी हुई है, अमीरी भी उससे कम नहीं है। अमीरी से विलासिता बढ़ती है। विलासी मनोवृत्तिवाले लोग जिस प्रकार की प्रसाधन—सामग्री का उपयोग कर रहे हैं, वह भारतीय संस्कृति के प्रतिकूल है। प्रसाधन-सामग्री के निर्माण में निरीह पशु-पक्षियों के प्राणों को जिस बर्बरता के साथ होमा जाता है, उसे कोई भी आत्मवादी वांछनीय नहीं मान सकता। जिस प्रसाधन-सामग्री में मूक प्राणियों की कराह घुली हुई है, उनका प्रयोग करने वाले अपने शरीर को भले ही सुंदर बना लें, उनकी आत्मा का सौंदर्य सुरक्षित नहीं रह सकेगा।

अहिंसा और अपरिग्रह की प्रतिष्ठा के लिए हमने अपनी सीमित शक्ति और सीमित साधनों से कुछ प्रयोग शुरू किए हैं। समस्या असीम है, जबकि हमारे प्रयोग सीमित हैं। अहिंसा को जीवन का मूल्य देने के लिए हमने अहिंसा सार्वभौम की परिकल्पना की और परिग्रह की समस्या से निबटने के लिए विसर्जन एवं संविभाग के सूत्र दिए। देश का कोई भी व्यक्ति अपनी आय का कुछ निश्चित प्रतिशत विसर्जित करने का संकल्प ले तथा अपने व्यवसाय से जुड़े सब लोगों को उसमें सहभागी बनाए तो एक सीमा तक समस्या सुलझ सकती है।

मैं मंगलकामना करता हूं कि अहिंसा और अपरिग्रह में विश्वास रखनेवाली शक्तियां एकजुट होकर काम करें, अहिंसा के संबंध में शोध, प्रशिक्षण एवं प्रयोग करें तथा धर्म को प्रायोगिक रूप देने का प्रयत्न करें। ऐसा करने से उभरती हुई युगीन समस्याओं से मानव-जाति को त्राण दिया जा सकता है। ❑

अपराध के प्रेरक तत्त्व

लोग कहते हैं कि आज का युग साइंस और टेक्नोलॉजी का युग है। मुझे लगता है कि इस युग में दो बातें विशेष रूप से बढ़ रही हैं—ऐक्सिडेंट और अपराध। शायद ही कोई दिन ऐसा जाए, जिस दिन दुर्घटना नहीं होती हो। दुर्घटना कब और कैसे हो जाती है, किसी को पता नहीं चलता। मौत को आना होता है तो वह कहीं भी द्वार बना लेती है। वज्र से निर्मित परकोटे को पार कर वह अपने गंतव्य तक आसानी से पहुंच जाती है। तीर्थंकरों और मनीषियों की यह अनुभवपूत वाणी पग-पग पर अपनी सचाई प्रकट कर रही है।

इस प्रकार के हादसे घटित होते ही रहते हैं। कहीं ट्रेन दुर्घटना, कहीं प्लेन दुर्घटना। कहीं बस-कार की टक्कर, कहीं ट्रक-मारुती की भिड़ंत। कहीं ट्रक से कुचल जाना, कहीं बस के धक्के से गिर जाना। कहीं स्कूटर का उलट जाना और कहीं बस का नदी-नाले में गिर पड़ना। कहीं बाढ़, कहीं भूकंप। कहीं तूफान कहीं ज्वालामुखी का फटना और भी न जाने कितने रूप हैं दुर्घटनाओं के। कोई कारण नहीं मिलता है तो मनुष्य स्वयं ही मृत्यु के लिए आमादा हो जाता है। आत्महत्या के भी नए-नए रूप विकसित हो रहे हैं। उन्हें देखकर कहना पड़ता है कि यह ऐक्सिडेंट का युग है।

अपराध बढ़ रहे हैं, यह चिंता का विषय है। इससे भी अधिक चिंतन इस बात पर हो रहा है कि अपराध क्यों बढ़ रहे हैं? वह कौन-सी प्रेरणा है, जो मनुष्य को अपराधी बनाती है? हत्या, मारपीट, आगजनी, डाका, बलात्कार, अपहरण आदि प्रवृत्तियों का उत्स क्या है? मनुष्य इतना क्रूर कैसे हो गया? वह आदमी को गाजर-मूली की तरह काटता है। निरपराध लोगों को सामूहिक रूप में गोलियों से भून देता है। ऐसी घटनाएं रात के अंधेरे में नहीं, दिन में होती हैं। एकांत बीहड़ों में ही नहीं, शहर के बीच में होती हैं। दर्शक देखते रह जाते हैं। उनमें इतनी दहशत व्याप्त हो जाती है कि न उनके मुंह से शब्द निकलते हैं और न हाथ हरकत में आते हैं। अपराध करने वाले बिना डरे, बिना सहमे निश्चिंत होकर अपने गंतव्य तक पहुंच जाते हैं। उसके बाद फुसफुसाहटें शुरू होती हैं। यह सब कब तक चलता रहेगा?

दुर्घटना का शिकार होने वाला चला जाता है। वह अपने पीछे छोड़ जाता है—शोकसंकुल परिवार का क्रंदन। दुर्घटनाएं इरादतन नहीं होती, पर उनके पीछे भी कुछ कारण हैं। एक बड़ा कारण है—शराब। ड्राइवर शराब पीकर अंधाधुंध बसें चलाते हैं, ट्रक चलाते हैं, कारें चलाते हैं और हादसे हो जाते हैं। अणुव्रत का एक नियम है—मादक नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करना। छोटा सा नियम बड़ी-बड़ी दुर्घटनाओं को टाल सकता है। काश! मनुष्य इसकी महत्ता को समझे। कुछ दुर्घटनाएं प्राकृतिक होती हैं, कुछ यंत्रों में गड़बड़ी से होती हैं। उनको टालना असंभव प्रतीत हो सकता है, पर जो संभव है, उसे असंभव क्यों बनाया जाए?

हत्या, अपहरण आदि प्रवृत्तियों के पीछे मनुष्य की जो मनोवृत्ति है, उसको परिमार्जित किए बिना अपराधों के आंकड़ों में कमी नहीं आ सकती। जब तक मन का मार्जन नहीं होगा, पग गलत रास्तों में बढ़ते रहेंगे। मन स्वस्थ हो तो व्यक्ति अपना कल्याण कर सकता है और दूसरों की त्रासदी को दूर कर सकता है। मन को स्वस्थ बनाने का छोटा-सा उपक्रम है अणुव्रत की शरण स्वीकार करना। अणुव्रत की चर्चा, अणुव्रत साहित्य का स्वाध्याय और अणुव्रती लोगों का संपर्क—यह त्रिपदी मनोवृत्ति के परिमार्जन की त्रिपदी है। इसके सहारे अणुव्रत लोकजीवन में उतर जाए तो अपराधी लोगों की दिशा बदली जा सकती है। ❑

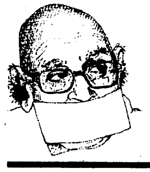

17 वीं पुण्य तिथि पर शत-शत श्रद्धांजलि

संयम और सादगी लाएं जीवन में

संयम एक शाश्वत सत्य है। जो शाश्वत होता है वह त्रैकालिक होता है। अतीत काल में संयम की अपेक्षा थी, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगी। जाति की सुरक्षा और विकास भी संयम से ही संभव है। संयम सदा आवश्यक है। इस वर्ष उसकी आवश्यकता और अधिक प्रखरता से सामने आ रही है। जो व्यक्ति थोड़ा भी संवेदनशील है, विश्व की स्थितियों से अवगत है और उन स्थितियों में परिवर्तन का आकांक्षी है, उसे संयम की शरण में आना ही होगा।

आज एक और हिंसा का तूफान है और दूसरी ओर प्रकृति का प्रकोप है। हिंसा का तूफान केवल बाहर बाहर से नहीं है, वह मनुष्य के भीतर से उठता है। मन में यदि हिंसा का भाव नहीं है तो हिंसा को उन्मुक्त होने का मौका भी नहीं मिलता। मन के भीतर हिंसा की जड़ें गहरी होती जा रही हैं, उन्हें कमजोर कर हिंसा को निर्वासित करने की जरूरत है।

प्रकृति किसी के हाथ में नहीं है। कहीं अतिवृष्टि के कारण बाढ़ आ जाती है तो कहीं पानी की एक बूंद भी नहीं गिरती है। कहा जाता है कि इस वर्ष शताब्दी का सबसे भयंकर सूखा है। राजस्थान के कुछ इलाकों में तो लगातार तीन चार वर्ष से पानी नहीं बरसा है। कुल मिलाकर पूरा देश दुष्काल की चपेट में है। ऐसे संकट के समय देश की जनता के लिए आशंसा करता हूं कि वह अपनी जीवनचर्या को विशेष रूप से संयत करने का प्रयत्न करे।

आज जबकि जन-जीवन अशांत है, पीड़ित है, संत्रस्त है और भविष्य के लिए अनाश्वस्त है, देश के किसी भी भाग में, किसी भी रूप में होनेवाले आडंबर, प्रदर्शन, खर्चबहुल समारोह का औचित्य सिद्ध नहीं होता। आडंबर-प्रदर्शन आदि विलासी मनोवृत्ति के प्रतीक हैं। पूरे देश या विश्व में अमन चैन हो तो साधन संपन्न लोगों द्वारा जुटाए जाने वाले विलासिता के साधन भी किसी की आंख पर नहीं आते, पर जिस समय लाखों-करोड़ों के सामने रोजी-रोटी की समस्या हो, पीने के लिए पानी नहीं मिलता हो, पशुओं को चारा नहीं मिलता हो, चारों और त्राहि मची हो, ऐसे नाजुक समय में विलासिता, आमोद-प्रमोद एवं किसी सार्थक उद्‌देश्य के बिना किए जाने वाले आयोजन, समारोह आदि अपने सामने प्रश्नचिह्न टांग लेते हैं।

जैन-दर्शन संयम प्रधान धर्म है। इसमें त्याग-तपस्या, संयम और सादगी का विशेष मूल्य है। वर्तमान की ज्वलंत समस्या का समाधान इन्हीं तत्त्वों में निहित है। मैं सबसे पहले तेरापंथ समाज एवं पूरे समाज को यह दृष्टि देना चाहता हूं कि वे धार्मिक आयोजनों तथा उत्सवों को संयत और सादा बनाने का लक्ष्य बनाएं। यह सामयिक अपेक्षा है। समय को देखकर चलने वाले व्यक्ति और समाज अपना हित साध सकते हैं, राष्ट्र का हित साध सकते हैं। समय को न पहचानने वाले लोग गंवार कहलाते हैं। विज्ञान और तकनीकी के युग में जीने वाले ऐसे गंवारूपन का परिचय न देकर अपनी विवेक चेतना को काम में लें तो समूचे राष्ट्र को दिशा-दर्शन मिल सकता है।

धार्मिक आयोजनों की भांति शादी-विवाह, पर्व-त्योहार आदि प्रसंगों पर भी संयम और सादगी की अत्यंत प्रासंगिकता समझें, जुझारू वृत्ति के साथ परंपरित मूल्य-मानकों को बदलें और सफल जीवन के लिए संयम को एक विशेष मानक के रूप में प्रतिष्ठित करें। आज के दिन मैं पूरी मानव जाति को यही संदेश देना चाहता हूं। ❐

कौन देगा समाधान?

मुख्य रूप से उभरकर जो समस्याएं सामने आई हैं, उनमें चरित्रहीनता, सांप्रदायिकता, अंधविश्वास, छुआछूत, बेरोजगारी, भूख, निरक्षरता, बंधुआ मजदूरी, जातिवाद, आतंकवाद, अलगाववाद आदि प्रमुख हैं। गौण रूप में जो समस्याएं हैं, उनकी सूची बनाना भी मुश्किल है। यहां जिन समस्याओं का उल्लेख किया गया है, वे लोक-जीवन के आज से जुड़ी हुई हैं। जब तक ये समस्याएं सिर ऊंचा उठाकर चलती रहेंगी, जनता का आज निश्चिंत और निर्विकल्प नहीं हो पाएगा।

देश के सामने समस्याएं हैं, इसमें कोई दो मत नहीं है। कुछ लोग समस्याओं को देख रहे हैं, कुछ उन्हें भोग रहे हैं, कुछ उनके समाधान के आश्वासन दे रहे हैं, कुछ समाधान की प्रतीक्षा कर रहे हैं और कुछ उनको और जटिल बना रहे हैं। जनता सोचती है कि समस्याओं का समाधान खोजने की जिम्मेदारी सरकार पर है। सरकार कहती है कि वह तब तक कुछ नहीं कर सकती, जब तक उसे जनता का भरपूर सहयोग न मिले। कौन क्या करता है, कुछ समझ में नहीं आता, पर यह बात सब लोग समझ रहे हैं कि देश की गर्दन पर समस्याओं का पंजा उत्तरोत्तर कसता जा रहा है। कुछ लोग तो यहां तक कह देते हैं कि इतनी समस्याएं तो अंग्रेजों के शासन में भी नहीं थीं। सोचने और कहने वालों का अपना-अपना दृष्टिकोण है, पर यह बात सबको समझ लेनी चाहिए कि सुविधाओं के नाम पर स्वतंत्रता की वकालत करना किसी भी स्वाभिमानी को स्वीकार्य नहीं होगा।

देश की परतंत्रता से आई हुई और स्वतंत्रता से उपजी हुई अनेक ऐसी समस्याएं हैं जो अविलंब समाधान मांगती हैं। प्रश्न एक ही है कि समाधान देगा कौन? सरकार से समाधान की आशा करना व्यर्थ है, क्योंकि वह स्वयं कुछ समस्याएं सरजती जा रही हैं। जनता में इतना साहस नहीं कि वह समाधान की जिम्मेदारी अपने सिर पर ओढ़ सके। समाधान के लिए जिस पीड़ा या बेचैनी की जरूरत होती है, वह भी तो उभरकर सामने नहीं आ रही है। लगता है, जैसे जनता समस्याओं के साथ जीने की आदी हो गई है। संभव है उसे समस्या के बिना जीवन जीया जा सकता है, ऐसी कोई कल्पना ही नहीं है।

देश को ऐसे हाथों की अपेक्षा

भारत को आज ऐसे फौलादी हाथों की अपेक्षा है, जो उसके आंसू पोंछ सकें, उसे संवार सकें और आगे बढ़ा सके। ऐसे हाथ किसके हो सकते हैं? जो शिखर पर बैठ कर भी तलहटी से जुड़ा रहे। जो देश की समस्याओं से जूझने का हिमालयी संकल्प संजोता रहे, जो संकल्प की पूर्ति के साधन जुटाता रहे और जो अंतिम पंक्ति में खड़े व्यक्ति को भी सड़क पर फेंके गए केलों के छिलकों-सी नियति न समझे।

क्या हमारे देश में ऐसा व्यक्ति है? होना चाहिए। हमारा देश महान् है। इसमें कहीं-न-कहीं कोई तो ऐसा व्यक्ति मिलेगा, जिसकी सांसों में देश की सांसें धड़कती हैं। जिसकी आंखों में देश की छवि प्रतिबिंबित रहती है, जिसकी वाणी में देश की जुबान बोलती है और जिसके मन में अस्सी करोड़ जनता बसती हैं।

करना होगा कुछ व्यक्तियों का निर्माण

देश के किसी भी कोने में ऐसा व्यक्ति हो तो उसकी खोज की जाए। खोज करने पर इस कोटि का व्यक्ति उपलब्ध न हो तो उसका निर्माण किया जाए। देश में निर्माण का काम द्रुतगति से चल रहा है–सड़क, पुल, बांध, भवन, कारखाने आदि बनते जा रहे हैं। नहीं बन रहे हैं तो केवल मनुष्य। जब तक मनुष्य का निर्माण नहीं होगा, राष्ट्र-निर्माण का दायित्व कौन ओढ़ेगा? स्वयं बने बिना किसी को बनाने की बात कितनी हास्यास्पद लगती है। कहा तो यहां तक गया है कि 'देवो भूत्वा देवं यजेत'–देव बनकर देव की पूजा करो। इस सिद्धांत में अणुव्रत की भी आस्था है। वह कहता है कि मनुष्य बनकर मनुष्यता को बनाओ। जब तक मनुष्य मनुष्य नहीं बनेगा, मनुष्यता की सुरक्षा संभव नहीं है।

मनुष्य को मनुष्य बनाने का सीधा-सा नुस्खा है अणुव्रत के पास। उसने मनुष्य के लिए कुछ पैरामीटर तय किए हैं। उनके अनुसार मनुष्य वह है–

- जो किसी निरपराध प्राणी की हत्या नहीं करता।
- जो आक्रांता नहीं बनता।
- जो जाति, रंग आदि के आधार पर मनुष्य को नहीं बांटता। छुआछूत में विश्वास नहीं करता।
- जो सांप्रदायिक दंगे नहीं भड़काता।
- जो मादक व नशीले पदार्थों का सेवन नहीं करता।
- जो वोटों की राजनीति में विश्वास नहीं करता।
- जो अपनी सुविधा और स्वार्थ के लिए किसी का अहित नहीं करता।

ऐसे कुछ और भी मानक हैं, जिनको आधार बनाकर मनुष्य सही अर्थ में मनुष्य बन सकता है। ऐसे मनुष्यों में से ही उभरकर कुछ लोग ऊपर आएंगे। वे अपने समाज या राष्ट्र की समस्याओं का हल खोजने के लिए किसी ईश्वर की प्रतीक्षा नहीं करेंगे। ऐसे लोग अणुव्रत जैसे नैतिक अभियान की नौका पर सवार होकर ही समस्याओं का सागर तर सकेंगे। ❑

अशांति के कारण

1. परस्पर संदेह की वृत्ति
2. निरपेक्ष मनः स्थिति
3. पारस्परिक सहयोग का अभाव
4. स्वार्थसिद्धि की प्रमुखता
5. समता का अभाव
6. मर्यादा की उपेक्षा
7. कर्तव्यनिष्ठा की न्यूनता
8. सहिष्णुता का अभाव
9. स्वेच्छाचारिता
10. अविवेक।
11. अनुशासन करने और कराने की पद्धति का अज्ञान।

असहिष्णुता की समस्या

युग की एक बड़ी समस्या का नाम है असहिष्णुता। इसका अस्तित्व हर युग में रहा है, पर इधर के कुछ दशकों में हर क्षेत्र में इसका दबदबा बढ़ा है। घर हो या कार्यालय, विद्यालय हो या सामाजिक संस्थान, धर्मस्थान हो या संसद भवन—चारों ओर असहिष्णुता की निष्पत्तियां दृष्टिगत हो रही हैं। घर की असहिष्णुता पारिवारिक बिखराव के रूप में उजागर हुई। कार्यालय की असहिष्णुता ने श्रमपराङ्मुखता व हड़तालों को जन्म दिया। विद्या-मंदिरों में तोड़फोड़ और सशस्त्र पुलिस के संरक्षण में परीक्षाओं का आयोजन असहिष्णुता की ही देन है। इसी के कारण सामाजिक संस्थाओं में मनोभेद की स्थितियां बद्धमूल हो रही हैं। सांप्रदायिक अभिनिवेशों का उद्भव धार्मिक असहिष्णुता के कारण ही होता है। सब ओर असहिष्णुता का साम्राज्य है तब राजनीति उससे मुक्त कैसे रह पाएगी? लोकसभा, राज्यसभा और विधानसभाओं के अंतरंग दृश्य देखकर एक छोटा बच्चा भी समझ सकता है कि वहां कितनी असहिष्णुता है।

सहिष्णुता के दो रूप हैं—शारीरिक सहिष्णुता और मानसिक सहिष्णुता। शरीर के स्तर पर सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, बीमारी, बुढ़ापा आदि स्थितियों को सहन करना शारीरिक सहिष्णुता है। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों में संतुलन रखना मानसिक सहिष्णुता है। शरीर के स्तर पर सहन करना सरल नहीं है, पर मन के स्तर पर सहन करना तो और भी कठिन है। सहन करना आज ही कठिन हुआ है, यह बात नहीं है। हजारों-लाखों वर्ष पहले भी सहना कठिन ही था। द्रौपदी द्वारा विनोद में कहा गया एक वाक्य कौरव सहन कर लेते तो महाभारत नहीं होता।

सहिष्णुता का अर्थ केवल सहना ही नहीं है, एक-दूसरे के अस्तित्व को स्वीकृति देना भी सहिष्णुता है। राम और भरत का सह-अस्तित्व कैकेयी स्वीकार कर लेती तो राम के वनवास का प्रसंग उपस्थित नहीं होता। इतिहास बताता है कि जहां-जहां सहिष्णुता घटी है, वहां-वहां कोई-न-कोई अनर्थ उपजा है। इस अनर्थ-परंपरा से बचने का एक ही उपाय है सहन करना। जो सहता है, वह रहता है, इस वाक्य को आधार मानकर सहन करने का अभ्यास किया जाए तो मानव-जाति पर मंडरा रहे संकट के बादलों को छिन्न-भिन्न किया जा सकता है।

मुख बहुत सुंदर हो और आंखें न हों तो उस सौंदर्य का कोई मूल्य नहीं है। सरोवर बड़ा हो और उसमें खिले कमल न हों तो उसका आकर्षण नहीं बढ़ता। इसी प्रकार जीवन में अनेक अच्छाइयां हों पर सहिष्णुता न हो तो जीवन का सौंदर्य नहीं निखरता। इसलिए जिंदगी के हर मोड़ पर सहनशीलता का विकास जरूरी है। ❐

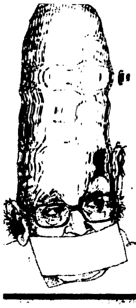

क्षमा करें गुरुदेव

'क्षमा करें गुरुदेव' पुस्तक आपने पढ़ी होगी। यह पुस्तक आचार्य श्री महाप्रज्ञ द्वारा लिखित उन संदर्भों को समेटे हुए हैं जो गणाधिपति श्री तुलसी के अंतिम जीवन के जीए गए क्षण-क्षण के साक्षी हैं। जैन भारती के इस जून अंक में हम पाठकों को एक बार पुनः अतीत के उस अध्याय से रू-बरू करा रहे हैं, जिसे स्वयं आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा है और जो आलेख इतिहास की अनमोल धरोहर बन चुके हैं।

आचार्य श्री तुलसी की पुण्यतिथि पर एक बार पुनः गणाधिपति श्री तुलसी के अंतिम दो प्रवचनों को मनोयोग से पढ़ें जो केवल प्रवचन ही नहीं थे, बल्कि उनमें भावी विकास की संभावनाओं का संकेत था। सबके लिए कल्याणी भावना थी। जैन धर्म और संघीय विकास का गौरव था और मानव जीवन की सार्थक यात्रा का आत्मतोष भी।

इसी के साथ गणाधिपति श्री तुलसी की सन्निधि में दिए गए आचार्य श्री महाप्रज्ञ का अंतिम प्रवचन भी हम पढ़ेंगे, जो आध्यात्मिक जगत में प्रेरणापाथेय बन गया है।

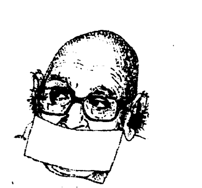

अंतिम दो प्रवचन बन गए इतिहास की अनमोल धरोहर

(1) गुरुदेव के अंतिम प्रवचन

'आज लगभग दो सप्ताह से आया हूं। एकांतवास में जलगांव की टीम निमित्त बनी है आने के लिए।'

महाप्रज्ञ ने कहा—आपको आना है। मैंने कहा—आपने निमंत्रण दिया है तो आना ही है। मैं नहीं आता था, फिर भी प्रवचन पंडाल वैसा भरता था। सब काम वैसे ही होता था। कमी केवल मेरी ही थी।

मैंने (महाप्रज्ञ) कहा—'और कोई कमी नहीं थी।'

हां, साध्वीप्रमुखा ने कहा—'वहां सब कुछ था, केवल आपकी कमी अखर रही थी।'

आचार्यश्री—अखरने की कोई बात नहीं थी। सब कुछ भावना और संस्कार की बात थी। हम अपना चिंतन करें और प्रभो के पथ पर चलें।

प्रभो! तुम्हारे पावन पथ पर जीवन अर्पण है सारा,
बढ़ें चलें हम रुकें न क्षण भी हो यह दृढ़ संकल्प हमारा।
प्राणों की परवाह नहीं है, प्रण को अटल निभाएंगे,
नहीं अपेक्षा है औरों की स्वयं लक्ष्य को पाएंगे।
एक तुम्हारे ही वचनों का भगवन् प्रतिपल सबल सहारा।।
आग्रहहीन गहन चिंतन का द्वार हमेशा खुला रहे,
कण-कण में आदर्श तुम्हारा पय मिश्री ज्यों घुला रहे,
जागें स्वयं जगाएं जग को, हो यह सफल हमारा नारा।।
शुद्धाचार विचार भित्ति पर हम अभिनव निर्माण करें,
सिद्धांतों को अटल निभाते निज-पर का कल्याण करें,
इसी भावना से भिक्षु का 'तुलसी' चमका भाग्य सितारा।।

जीवन्त व्यक्ति थे महावीर

हम प्रभु के पावन पथ पर चलें, इससे बड़ी बात कोई हो नहीं सकती। भगवान महावीर कोई रूढ़ व्यक्ति नहीं थे, जीवंत व्यक्ति थे। वे पचीस सौ वर्ष बाद भी नित्य-जीवन और प्रासंगिक लग रहे हैं। उन्होंने कहा—'सत्य को सदा खोजते रहो, नया रास्ता निकालते रहो।' उन्होंने विचार का दरवाजा कभी बंद नहीं किया। उन्होंने कहा—'तुम सोचो, विचारो, नया मार्ग खोजो।' इस महावीर वाणी का आधार मिला। हम सदा नया सोचते-विचारते रहे हैं, नया खोजते रहे हैं, कुछ करते रहे हैं, इसीलिए हमारा क्रम प्रायोगिक बन गया है। हमारा केवल जनता की भीड़ में विश्वास नहीं है। प्रयोग में विश्वास है। नए-नए प्रयोग हों। जहां कहीं हमें सत्य मिला, हमने शिरोधार्य कर लिया। यह बड़ी बात है कि अपने दिमाग के दरवाजे को बिलकुल खुला रखें।

कर्म से धार्मिक बने

महाप्रज्ञजी ने ठीक कहा—जैन ही नहीं, धार्मिक लोग भी रूढ़-जड़ बन गए हैं। जिस कुल में जन्म लिया, वही धर्म है? क्या जन्म से कोई धर्म होता है? एक जैन कुल में बैल ने जन्म लिया, क्या वह जैन हो गया? तेरापंथ कुल में जन्म लिया, क्या वह तेरापंथी बन गया? मैं इसे नहीं मानता।

रोटरी क्लब जोधपुर में एक प्रोग्राम था। एक पत्रकार ने प्रश्न किया—'जैनों की-संख्या इतनी कम क्यों है?'

मैंने पूछा—'कितनी है?'

पत्रकार–'जनगणना के अनुसार तीस-चालीस लाख होगी।'

मैं–'वे भी जन्मना जैन हैं। जैन कुल में जन्म ले लिया, इसलिए जैन नहीं कहलाते हैं।'

पत्रकार–'तब तो जैन बहुत कम हैं।'

मैं–'नहीं'

पत्रकार–'कैसे?'

मैं–'चौंकिए मत। अजैनों में जैन ज्यादा हैं, त्याग से, वैराग्य से, भावना से, विवेक से।'

पत्रकार–'तब तो ठीक है।'

यह मान लिया गया कि जिस कुल में जन्म लिया, वह धर्म हमारा है। यह भूलभरी भ्रांति है। हम जन्म से नहीं, कर्म से धार्मिक बनें, अपना सत्य स्वयं खोजें–अप्पणा सच्चमेसेज्जा।

प्रकाश और संयम

मैं ज्यादा बोलने नहीं आया हूं। एक व्यक्ति की कमी थी, उसे पूरी करने आया हूं। आ गया हूं तो कुछ कहना है।

कल्याण के दो रास्ते हैं–स्वयं का प्रकाश और स्वयं का संयम। ये दोनों चीजें हैं तो क्या होगा?

श्रृण्वन्ति ये नैव हितोपदेशं, न धर्मलेशं मनसा स्मरन्ति।
रुजः कथंकारमथाऽपनेयास्तेषामुपायस्त्वयमेक एवं।।

जो मनुष्य हितोपदेश को सुनते ही नहीं और न धर्म के लेश का भी मन से स्पर्श करते हैं, उनके मानसिक और भावनात्मक रोग कैसे दूर किए जा सकते हैं? जबकि उन रोगों को दूर करने का एकमात्र उपाय है–हितोपदेश का श्रवण और धर्म का आचरण।

संध्या का समय। कार तेज चल रही थी। पुलिस ने कार को रोकने का प्रयत्न किया।

ड्राइवर ने कहा–क्यों?

पुलिस–प्रकाश नहीं है, लाइट नहीं है।

ड्राइवर बोला–हट जाओ, ब्रेक भी नहीं है, मारे जाओगे।

न ब्रेक है, न लाइट है, न अपना नियंत्रण है और न अपना प्रकाश। वह ड्राइवर ऐक्सिडेंट नहीं करेगा तो क्या करेगा? जिस व्यक्ति में अपना संयम और अपना प्रकाश नहीं है, वह डूबेगा। कल्याण का मार्ग है अपना संयम और अपना प्रकाश। प्रत्येक श्रावक में इसका विकास होना चाहिए। एक पुस्तक है 'श्रावक-संबोध'। जैन श्रावक कैसा होना चाहिए? इसका सांगोपांग उसमें विवेचन है। भंवरजी कोठारी आए। उन्होंने श्रावक-संबोध को पढ़कर कहा–यह जैन श्रावक की गीता है। आज तक ऐसा ग्रंथ नहीं आया था। आप लोग 'श्रावक संबोध' को पढ़ें। जैन श्रावक की जीवनशैली कैसी होनी चाहिए, इसका बोध होगा। यदि श्रावक-संबोध के अनुरूप जीवनशैली बन जाए तो अनेक समस्याओं का समाधान हो जाए।

महावीर का धर्म है समता। अपने जीवन में समता आए, जन-जन के जीवन में समता आए।

परिग्रह के बिना काम नहीं चलता। इसकी आसक्ति के बिना काम चल सकता है। उसे कम करें, विसर्जन करना सीखें। अपने अहंकार का विसर्जन करें।

एक सेठ ने पंडित का अभिवादन किया। अभिनव अभिनंदन। सोने की गिन्नियों से चौकी को भर दिया। उसे वस्त्र से ढंक दिया। पंडितजी ने कहा–इस वस्त्र को हटाएं। वस्त्र हटाया। चमचमाती गिन्नियों का प्रकाश फैल गया। सेठ ने कहा–पंडितजी! मेरी इस दक्षिणा को स्वीकार करो। सब लोग देखते रह गए। सेठ खुशी में फूल गया। उसका अहंकार बोल उठा–पंडितजी! आपने बहुत अभिनंदन देखे हैं। बहुत उपहार देखे हैं। आज जैसा कभी हुआ? पंडितजी का मानस जाग उठा। उसने खड़े

होकर जेब को टटोला। एक सिक्का निकाला। चौकी पर रखते हुए कहा—मैं इस दान को लौटाता हूं। आपको कहीं ऐसा विसर्जन करने वाला मिला? सेठ का अहं चूर-चूर हो गया।

बंधुओ! विसर्जन में क्या शक्ति है? क्या आनंद है? यह मैं जान सकता हूं। मुझे कोई चिंता नहीं है कि हजारों आदमियों को कौन संभालेगा? साधु-साध्वियों को कौन संभालेगा? मैं निश्चिंत बैठा हूं। महाप्रज्ञ सब काम संभाल रहे हैं। यह विसर्जन का आनंद है। आज तो इतना मुश्किल हो गया है कि लोग कुछ छोड़ना ही नहीं चाहते। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है देखकर कि इस विसर्जन का अंकन किया गया है।

मूल बात यह है कि मनुष्य को मनुष्य बनाने का प्रयत्न किया जाए। आप तेरापंथी हैं या नहीं? जैन हैं या नहीं? किंतु मैन हैं, अच्छे मैन बनें।

आज मैं अधिक बोल गया हूं। मैंने सोचा—पंद्रह दिनों से मौन रहा हूं तो दो मिनट लंबा बोल दूं। इतनी बड़ी जनता शांत बैठी है, यह श्रद्धा भावना का परिणाम है। यह श्रद्धा भावना बढ़ती रहे। सब मानवता को आगे बढ़ाए, इंसानियत को आगे बढ़ाए, पर्यावरण की समस्या को सुलझाए। इसी में देश का भला है, समाज का भला है।

(2) जीवन का अंतिम वक्तव्य

23 जून 1997 को प्रातःकाल हम गुरुदेव के दर्शन के लिए बोथरा-भवन पहुंचे। वंदना और सुख-संवाद के अनंतर गुरुदेव ने कहा—आज हम व्याख्यान के समय आएंगे। मैंने निवेदन किया—प्रवचन में पधारने की निरंतरता बन जाएगी। हम लोग तेरापंथ-भवन में आ गए। गुरुदेव साढ़े नौ बजे प्रवचन-स्थल पर पधारे। मैंने गुरुदेव के समक्ष प्रवचन किया, वह गुरुदेव के सान्निध्य में होने वाला अंतिम प्रवचन है। गुरुदेव ने उसके बाद प्रवचन किया, वह परिषद् में होने वाला गुरुदेव का अंतिम प्रवचन है।

गुरुदेव के उस प्रवचन का मूल पाठ यह है—

निर्जरा के अर्थी बनें

वक्ताओ और श्रोताओ ! आज महाप्रज्ञजी ने एक नई बात जो सुझाई है, बहुत पते की बात है, आवश्यक बात है। हमारे धर्मसंघ में जो साधु-साध्वियां वृद्ध हो जाते हैं, अपंग हो जाते हैं, असहाय जैसे हो जाते हैं, उनको चिंता की जरूरत नहीं। निश्चिंतता का जीवन उनको मिलता है। उनको एक ही चिंता है कि अपनी साधना करें, अपने मन पर काबू रखें, अपनी वाणी को काबू में रखें, अपने आपको संयत रखें, फिर उनकी सेवा का पूरा जिम्मा धर्मसंघ का है। कोई व्यक्ति लाडनूं सेवाकेंद्र को देखता है, तो उसे पता चलता है कि सेवा कैसी होनी चाहिए? बात ब्रिटेन की बताई गई। हमारे देश में भी वृद्धों की दुर्दशा प्रारंभ हो गई है। यत्र-तत्र उसका दर्शन किया जा सकता है। बड़ी कठिनाई है। जहां स्वार्थ कुछ भी शेष नहीं रहा, सारा स्वार्थ समाप्त हो गया, वहां उनको संभालना कोई छोटी-बड़ी बात नहीं है। इस संदर्भ में 'निज्जरट्ठिए' पाठ बहुत महत्त्वपूर्ण है। निर्जरा के अर्थी बनकर काम करो। वही सही काम कर सकता है। यह सूक्त बहुत अच्छा लगा। वृद्ध लोगों को यह रास्ता बताना चाहिए कि वे कैसे शांति का जीवन जी सकें, कैसे आनंद का जीवन जी सकें, कैसे बचे-खुचे जीवन को सार्थक बना सकें?

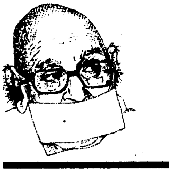

मैंने गुरुदेव के प्रवचन के बीच में कहा—पहले एक बात कहनी थी, पर समय हो गया। अब उसे कहना चाहता हूं। वृद्धावस्था में कैसे जीना चाहिए, इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है पूज्य गुरुदेव का राजलदेसर का चातुर्मास्य। पूज्य गुरुदेव के 'साइटिका' का थोड़ा असर हो गया।

गुरुदेव—थोड़ा नहीं, काफी असर हो गया।

मैं—डॉ. माथुर आए। उन्होंने कहा, आपको सात दिनों तक एकदम बेड-रेस्ट करना है। यह शब्द सुनने में भी अच्छा नहीं लगा, किंतु जीने की कला देखिए। गुरुदेव ने कहा—हम बेड रेस्ट नहीं, कायोत्सर्ग करेंगे। सात दिन कायोत्सर्ग किया, एक श्लोक बना लिया—

गुरुदेव—आनंदो मे रोमणि रोमणि,

मैं—मेरे रोम-रोम में आनंद है।

गुरुदेव—प्रसरतु सततं मनःप्रसत्तिः।

मैं—मन की प्रसन्नता बढ़ती जाए।

गुरुदेव—स्वस्थःस्वस्थोऽहमिति च मन्ये,

मैं—मैं मानता हूं, मैं स्वस्थ हूं, स्वस्थ हूं।

गुरुदेव—कायोत्सर्गे सुखं शयनः।

मैं—कायोत्सर्ग में सानंद सो रहा हूं। सचमुच सारा कष्ट समाप्त हो गया। सात दिन का समय आनंद में बीत गया। यह कला सीखनी है।

गुरुदेव—उस समय इस कला की प्रेरणा तो आपने ही दी है। उसे भूलें कैसे? आवश्यक बात तो बतानी चाहिए। मैंने कहा—बेडरेस्ट। आपने कहा—कायोत्सर्ग।

मैं—यह इतना बड़ा निदर्शन है कि कैसे आनंदमय जीवन जीया जाए।

गुरुदेव—सचमुच! एक निदर्शन है।

विकास अंधेरी ओरी का

आज दो बातों का जिक्र मुझे करना है। पहली बात है—अंधेरी ओरी की। लोग आए, चर्चा की, चिंतन किया, जाने लगे। मैंने कहा—बस, पता ही नहीं कौन आए, क्यों आए? समाज के इतने कर्मठ, चिंतनशील अच्छे व्यक्ति। परस्पर कोई हेलमेल नहीं, जान-पहचान नहीं। भाई पोखरनाजी, रोशनजी, संपतजी, किशनजी आदि कर्मठ कार्यकर्ता हैं। काम में जुटे हुए हैं, पर गंगाशहर-बीकानेर का कोई व्यक्ति उन्हें क्यों जाने? ये उनको क्या जानें। पटावरीजी को कठिनाई हो गई कि वे अपने को मेवाड़ का बताएं या थली का? कितने अच्छे कार्यकर्ता समाज के आए हैं। मैंने उनसे कहा—देखो! जाना हो तो मंगलपाठ सुन लो, पर मैं तुम्हें जाने की बात नहीं कहता हूं। प्रातःकाल प्रवचन तक ठहरो। तुम्हारा परिचय कराएंगे। विशेषकर अंधेरी ओरी का, जो काम कर रहे हो, कम से कम जनता को तो अवगत करा दो। लोगों को जानकारी करा दो कि कितना बड़ा काम हो रहा है।

मैं अपने धर्मसंघ में तीन स्थानों का सबसे बड़ा महत्त्व आंकता हूं—बगड़ी, केलवा और सिरियारी। राजसमंद तो खैर है ही। बगड़ी का महत्त्व तो इस दृष्टि से है कि वहां से इसका अभिनिष्क्रमण हुआ। वह बहुत महत्त्व की चीज है।

भाइयो! बगड़ी का काम हो गया, सिरियारी का काम संभल गया अच्छे ढंग से, केलवा के बारे में क्या कहूं? पीछे रहा! वह स्थल पीछे रहने का नहीं है। कुछ कारण से पीछे रह गया। पिछली बार जब पोखरनाजी आदि आए तो मैंने कहा—एक काम करो, मुनि मोहनजी का चातुर्मास्य राजसमंद है, उनको तुम वहां ले जाओ, दिखा दो। वह दिमागी आदमी है। सोचता है, चिंतन

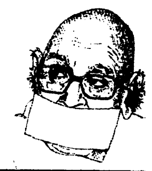

करता है। ये वहां गए, पूरा अध्ययन किया, देखा और परामर्श दिया। कुछ काम हुआ है। आज ये लोग पूरी योजना लेकर आए हैं। भाइयो! हमारा तो इतना ही काम है कि ऐसे स्थलों को भूलें नहीं। केलवा और अंधेरी ओरी हमारे दिमाग से कभी निकलें नहीं। वे लोग धन्य हैं जो अंधेरी ओरी के पास निवास करते हैं और सतत भिक्षु, भिक्षु उनके दिमाग में रहता है। उस जन्मभूमि के स्थल को इतने वर्षों तक भुलाया तो नहीं, पर ढिलाई कुछ अवश्य रही। उत्साही लोग आए हैं। पूरा समाज स्वागत करेगा इनके चिंतन का। मैंने कहा, चिंतन तात्कालिक नहीं होना चाहिए। चिंतन लंबा रहे, चिंतन में दूरदर्शिता रहे और श्लथता नहीं आए।

संस्कार निर्माण का प्रयत्न

दूसरी बात है हमारे विद्यार्थियों की। इन्होंने कल जो इतनी कठोर परीक्षा दी, जिसकी मैं कल्पना भी नहीं करता था। हमारे जिनेशजी भी पीछे रह गए। इनको सबसे पहले आना था। इन्होंने बड़ा श्रम किया है, दिन-रात एक किया है। इन्होंने कहा—मैं आपका समय लेना चाहता हूं। तारीख दे दी और भूल गया, कायोत्सर्ग में लग गया। ये ठीक समय पर आए, किंतु इन्हें रोक दिया गया। फिर लोगों ने कहा—अंदर चले जाइए। छोटे-छोटे विद्यार्थी, नंगे पैर सड़क पर। बड़ी कठिन परीक्षा दी इन्होंने, किंतु बड़ी परीक्षा दिए बिना पास भी कहां होता है? ये बच्चे चुपचाप आकर बैठ गए। मैं भूल गया कि मैंने इन्हें समय दिया है। जिनेशजी आए और दिनेशजी भी आ गए। इस विषय में मेवाड़ थोड़ा पिछड़ा है, मारवाड़ आगे आया है। दीक्षा के क्षेत्र में मारवाड़ आगे बढ़ा है, मेवाड़ थोड़ा पिछड़ा है। ध्यान देना पड़ेगा। मेवाड़ पिछड़े, यह शब्द ही हमको अच्छा नहीं लगता। इस पर विचार करना चाहिए।

मैंने (महाप्रज्ञ) गुरुदेव के इस कथन पर निवेदन किया—आप यह सारा भार यहीं रख दें। मुझे फरमा दें।

गुरुदेव—ठीक है। हमारा इतना ही कहना है कि विद्यार्थियों ने जिस प्रसन्न मन से साधना की है, उसे हम आगे बढ़ाएंगे, भूलेंगे नहीं।

पूंजी को बढ़ाएं

आप जानते हैं कि पूंजी प्राप्त करना एक बात है, किंतु उसे सुरक्षित रखना दूसरी बात है और पूंजी को बढ़ाना एक अलग बात है। तेरापंथ को निरंतर आगे बढ़ाते रहना है, उसे विस्मृत नहीं करना है। आप देखिए—

प्रभो! यह तेरापंथ महान्
मिला मिलेगा जिससे सबको आध्यात्मिक अवदान।

बंधुओ! वास्तव में उस पंथ की महत्ता है, जो हमें मिला है। हमारा काम है उसके गौरव को बढ़ाना। उसको आगे से आगे बढ़ाकर हम सही रूप में अपने लक्ष्य को प्राप्त करें। इस धर्मसंघ की गतिविधि को, इसके आचार-विचार को, इसकी मर्यादाओं को, इसके अनुशासन को कहीं दुर्बल, कहीं कमजोर न होने दें। हमारा विश्वास है कि इस धर्मसंघ को हम केवल सुरक्षित ही नहीं रखेंगे, बढ़ाते रहेंगे, बढ़ाते रहेंगे। इन्हीं शब्दों के साथ ओम् अर्हम्।

गुरुदेव का यह प्रवचन और संगान इतनी ऊर्जा से परिपूर्ण था कि कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि यह ओजस्वी वाणी और मधुर संगान अब सुनने को नहीं मिलेगा, अपनी ऊर्जा का विकिरण नहीं करेगा।

यह प्रवचन पूज्य गुरुदेव की भावना, कर्तृत्व, व्यापक दृष्टिकोण और उदात्त चेतना का प्रतिनिधित्व कर रहा है। इसे पढ़कर पांच फुट के पौद्गलिक शरीर में छिपी आत्मा की महानता का मूल्यांकन किया जा सकता है। ❑

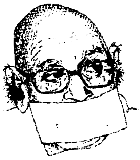

आचार्य महाप्रज्ञ का गुरुदेव की सन्निधि में अंतिम प्रवचन

गुरुदेव के प्रवचन से पूर्व मैंने प्रवचन किया। गुरुदेव की सन्निधि में प्रवचन करने का एक अनुपम आनंद था। मैं जो कहता था, उस पर गुरुदेव अपनी टिप्पणी करते, उसका मूल्यांकन करते। वैसा कोई समर्थ टिप्पणीकार और मूल्यांकन करने वाला मुझे नहीं मिला। बहुत लोग कहते—आप जैसा गुरुदेव की सन्निधि में बोलते हैं, वैसा वक्तव्य अन्यत्र नहीं होता। इसमें सचाई है। गुरुदेव की प्रसन्नता मेरे लिए सब कुछ थी। उनका एक वाक्य भी मेरे लिए हजार श्लाघा-वाक्यों से अधिक मूल्यवान था। मैंने कब कल्पना की—गुरुदेव की सन्निधि में यह मेरा अंतिम प्रवचन है, पर इसे नियति मानूं कि सबकुछ कल्पना से परे ही घटित हुआ। प्रवचन का अविकल पाठ इस प्रकार है—

अच्छा है वह धर्म

एक प्रश्न आया कि दवा कौन-सी अच्छी है? चिकित्सक कौन-सा अच्छा है? जिस व्यक्ति का विश्वास ऐलोपैथी में था, उसने कहा—ऐलोपैथिक दवा अच्छी है। जिसका विश्वास होमियोपैथी में था, उसने कहा—होमियोपैथी दवा अच्छी है। जिस व्यक्ति का विश्वास आयुर्वेद में था, उसने कहा—आयुर्वेदिक दवा अच्छी है। जिसका जिसमें विश्वास था, उसने उसी विधि को अच्छा बताया। इस प्रश्न का एक मार्मिक उत्तर दिया गया—

तदेव युक्तं भैषज्यं, यदारोग्याय कल्पते।
स एव भिषजां श्रेष्ठः, यो रोगेभ्यः प्रमोचयेत्।।

वह दवा अच्छी है जो रोग को मिटाए। वह चिकित्सक अच्छा है, जो रोगी को रोगमुक्त बना दे। मूल बात है—धर्म कौन-सा अच्छा है? धर्म का गुरु कौन-सा अच्छा है? वह धर्म अच्छा है जो रोग को मिटाए, समस्या को सुलझाए। वह धर्म अच्छा नहीं है जो समस्या को न सुलझाए, अनंत में डाल दे और यह कहे—धर्म करो, परलोक सुधर जाएगा। आज ऐसा धर्म अच्छा नहीं हो सकता। आज वह धर्म अच्छा है, जो मानसिक समस्या को सुलझाए, कषाय-जनित समस्या को सुलझाए, भावनात्मक उद्वेग से उत्पन्न होनेवाली समस्या को सुलझाए। वह धर्मगुरु अच्छा है, जो समस्या को मिटानेवाले धर्म का प्रतिपादन करे। रूढ़ धर्म का प्रतिपादन करने वाला धर्मगुरु आज अच्छा नहीं हो सकता।

बड़ी महत्त्व की बात है—धर्म वह अच्छा है जो समस्या को सुलझाए। शिविर एक उपाय है समस्या को सुलझाने का, व्यक्तित्व के निर्माण का। ऐसे व्यक्तित्व का निर्माण हो, जिससे व्यक्ति की चेतना जाग जाए, अपनी समस्या को सुलझाने की चाबी हाथ में आ जाए। चाबी हाथ में दे देना बहुत बड़ी बात है। हमेशा साथ रहने की जरूरत नहीं। कब-कब साथ रहोगे? हाथ में चाबी दे दो, रहस्य दे दो, गुर दे दो, ताला अपने आप खोल ले और भीतर प्रवेश कर जाए।

बदलने का उपाय

मैं मानता हूं—शिविर बहुत बड़ा उपाय है बदलने का, धर्म को व्यावहारिक रूप में समझाने का। धर्म की बातें आकाशी उड़ान होती हैं, जो जीवन में काम नहीं आतीं। एक बार उनको पुस्तकों में सीमित रखें। धर्म की उन बातों का, जो जीवन से संबंध रखती हैं, जीवन में प्रयोग करें। उनको जीवन में लाएं, जीवन के व्यवहार

में लाएं। अभी विद्यार्थियों ने बताया कि शिविर में हमें सिखाया गया—कैसे बोलना चाहिए, कैसे खाना चाहिए, कैसे बैठना चाहिए, कैसे खड़े होना चाहिए, कैसे सांस लेना चाहिए? ये सारी बातें सिखाई गईं। ये जीवन की बातें हैं। ये हमारे जीवन में काम आती हैं। इन सब बातों को जान लें तो जीवन की पोथी का वह अध्याय खुलता है, जिस अध्याय में जीवन के रहस्य छिपे पड़े हैं। वे रहस्य हमारे सामने आ जाते हैं। अच्छे व्यक्तित्व के निर्माण में इन जीवन-स्पर्शी बातों का बहुत बड़ा उपयोग है।

भाव और मुद्रा

एक सिद्धांत है बैठना और भाव। भाव भीतर है। बैठना शरीर की क्रिया है, किंतु जिस प्रकार का भाव होगा, उसी प्रकार का आसन बन जाएगा और जिस प्रकार का आसन होगा, उसी प्रकार का भाव आ जाएगा। एक आदमी सिर पर हाथ रखकर बैठा है। देखने वाला देखते ही कह देगा—यह व्यक्ति उदास है, खिन्न है, चिंता में बैठा है। एक आदमी सीधा बैठा है, प्रसन्न मुद्रा में बैठा है। देखने वाले को लगेगा, बड़ा प्रसन्न है, आनंद में जी रहा है। बैठना और भाव—दोनों साथ में चलते हैं। भाव और सोना—दोनों साथ चलते हैं। सोने का बड़ा विज्ञान है। जैन आचार्यों ने इस विषय पर बहुत प्रकाश डाला है कि कैसे सोना चाहिए? पुरुष को कैसे सोना चाहिए और स्त्री को कैसे सोना चाहिए? सोने की अनेक मुद्राएं हैं। एक मुद्रा ऐसी होती है, जिसमें कायोत्सर्ग सहज होता है। शिविर में ये जो बातें सिखाई जाती हैं, वे उपाय हैं व्यक्तित्व के निर्माण के।

बुढ़ापा कैसे बिताएं?

शिविर हर व्यक्ति को करना चाहिए। विद्यार्थियों और युवकों के शिविर होते हैं। क्या केवल विद्यार्थी को ही शिविर करना चाहिए? क्या केवल युवक-युवतियों को ही करना चाहिए? कभी यह क्यों नहीं सोचा जाए—जो साठ वर्ष से ऊपर के प्रौढ़ और वृद्ध व्यक्ति हैं, उनका भी शिविर लगाना चाहिए। आवश्यक है यह। बुढ़ापे में कैसे आनंद से रह सकें? दुःख का जीवन बुढ़ापे में ज्यादा होता है। एक लेखक ने लिखा है—किसी ने नरक नहीं देखा। यदि नरक देखना है तो योरोपीय देशों के बूढ़ों को देखो, नरक की बात समझ में आ जाएगी। बड़े दुःखी हैं वे। हिंदुस्तान के वृद्ध तो शायद इतने दुःखी नहीं हैं, क्योंकि यहां पारिवारिक जीवन है, परिवार के लोग माता-पिता का काफी ध्यान रखते हैं। वृद्धों का वहां कोई ध्यान रखनेवाला नहीं है। माता-पिता वृद्ध हो गए तो उन्हें किसी वृद्धाश्रम में भेज दो। सरकार के द्वारा ऐसे वृद्धाश्रम चलाए जाते हैं। उनमें भेज दें, फिर संभालने की जरूरत नहीं। एक बार कैलाश वाजपेयी जो अच्छे लेखक, चिंतक हैं, अणुव्रत भवन में आए। उन्होंने पूज्य गुरुदेव से कहा—गुरुदेव! मैं अभी योरोपीय देशों की यात्रा करके आया हूं। वहां मैंने वृद्धों का जीवन देखा तो मैं दुःखी बन गया। एक वृद्धाश्रम में मैं मिलने के लिए गया। वहां मेरा एक मित्र था। मैंने दरवाजा खटखटाया। उसने दरवाजा खोला। मुझे देख रोमांचित हो गया। मुझसे लिपटकर रोने लगा। मैंने कहा—यह क्या बात है? आपको क्या कठिनाई है? क्या कष्ट है? क्या व्यवस्था अच्छी नहीं है? उसने कहा—व्यवस्था बहुत अच्छी है। कोई कमी नहीं है। सारी सुविधाएं हैं। खाने को अच्छा मिलता है, किंतु जीवन में जो मिलना चाहिए—स्नेह, प्रेम और वात्सल्य, वह किसी का नहीं मिलता। सात दिन में दो दिन डॉक्टर आता है। हमारी सारी जांच कर चला जाता है। यदि उसके बीच कोई मर जाए तो तीन दिनों तक लाश पड़ी रहती है। यहां संभाल करने वाला नहीं है। जहां यह व्यवस्था हो, वहां कैसा जीवन होगा? यह कल्पना आप स्वयं कर सकते हैं। नरक फिर और क्या है? एक नरक का नमूना बन गया।

खाली समय कैसे बिताएं?

इतने शिविर लगते हैं। यदि वृद्ध लोगों का शिविर लगे, उन्हें यह सिखाया जाए कि कैसे बुढ़ापे को बिताया जाए? कैसे वृद्धावस्था को आनंदमय बनाया जाए? जो

वृद्ध आदमी कायोत्सर्ग करना सीख जाते हैं, उन्हें फिर ज्यादा जरूरत नहीं होती। बूढ़ा आदमी बात ज्यादा करना चाहता है। बात करने का बहुत शौक होता है। अकेला क्या करे? किससे बात करे? घरवाले मिलते नहीं। सब काम-धंधे में लगे रहते हैं। पास में कोई रहता नहीं है। अब खाली समय को आनंदमय कैसे बनाया जाए? व्यक्ति यह कला सीख जाए तो किसी व्यक्ति की जरूरत नहीं। इस संदर्भ में प्रभुदयालजी डाबड़ीवाल की बात उद्धृत करना चाहता हूं। वे अस्वस्थ हो गए। जैन विश्व भारती में दर्शन करने आए। पक्षाघात से पीड़ित थे। जो व्यक्ति सदा सक्रिय रहता था, राजनेताओं का घेरा लगा रहता था, सौ-पचास व्यक्ति प्रतिदिन आते जाते रहते थे, पक्षाघात हो जाने से लोगों का आना-जाना कम हो गया। प्रभुदयालजी बातचीत के रसिक थे। अब कोई व्यक्ति पास नहीं आता तो बात किससे करें? उनका जीवन दुःखी हो गया। मैंने उन्हें दर्शन दिए। उनसे बातचीत की। मैंने कहा—प्रभुदयालजी! इस प्रकार जीओगे तो जीवन दुःखमय बन जाएगा। सदा आनंद में रहे हो, हंसते-खेलते रहे हो। अब बड़ी कठिनाई है। लोग आपके पास निरंतर आते रहें, चौबीस घंटे रहें, यह कल्पना छोड़ दीजिए। अब कौन आएगा? स्वार्थ सधता है तो लोग आते हैं। स्वार्थ नहीं सधता है तो नहीं आते हैं। पहले स्वार्थ सधता था। अब स्थिति बदल गई है।

मेरे इस कथन पर गुरुदेव ने कहा—जयप्रकाश नारायण और लोहिया जैसे व्यक्ति उनके मित्र थे। घंटों-घंटों तक बैठे रहते थे। हरियाणा के मुख्यमंत्री बंशीलालजी से भी उनका बहुत अच्छा संबंध था, संपर्क था।

मैंने प्रभुदयालजी से कहा—अब सब बातें छोड़ो, एक काम करो—ॐ भिक्षु जय भिक्षु—इस महामंत्र का जप करो। इससे समय भी आनंदमय बीतेगा। प्रभुदयालजी ने इस बात को पकड़ लिया। इस जप-मंत्र को जीवन का अभिन्न अंग बना लिया। उनका जीवन सुखी बन गया। उनके छोटे भाई शिवचंदरायजी डाबड़ीवाला आए। उन्होंने बताया—आज भैया की स्थिति यह हो गई है कि हम लोग जाते हैं तो दो मिनट बात करते हैं और फिर माला जपना शुरू कर देते हैं।

जीवन-शैली का प्रशिक्षण

शिविर जीवन-शैली के प्रशिक्षण का उपक्रम है। विद्यार्थी अवस्था में कैसे जीएं? युवावस्था में कैसे जीएं? बुढ़ापे में कैसे जीएं? इन सबका प्रशिक्षण होना चाहिए। वृद्धों, प्रौढ़ों, युवकों और बच्चों—सबके लिए शिविरों की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे जीवन की कला समझ में आ सके। व्यक्ति जीवन जीने की कला को नहीं जानता है तो जीवन भार बन जाता है।

एक किराएदार को मकान की जरूरत थी। वह मकान मालिक से मिला। मकान मालिक ने पूरा मकान दिखाया। किराएदार ने पूछा—कितना किराया देना होगा? मकान मालिक ने कहा—दस हजार रुपए। किराएदार ने कहा—यह तो बहुत अधिक है। मकान मालिक बोला—इसमें इतने अच्छे कमरे हैं, सारी सुविधाएं हैं, अच्छा रसोईघर है। किराएदार ने कहा—इतना किराया ले लिया तो फिर रसोईघर क्या काम आ पाएगा? जीवन पर इतना भार लाद दिया जाए तो क्या होगा? हम उसे हलका बनाएं? बोझिल न बनाएं। मैं मानता हूं कि आनंदमय, शांतिमय और सुखमय जीवन जीने की एक कला है और वह कला शिविर में उपलब्ध होती है। इस कला से कोई वंचित न रहे। जो व्यक्ति इस कला को सीख लेता है, उसे धर्म का मर्म समझ में आ जाता है।

मैं पुनः इस बात को दोहराना चाहता हूं—वह दवा अच्छी है, जो रोग को मिटाए। वह चिकित्सा अच्छी है, जो रोगी को रोगमुक्त बनाए। वह धर्म अच्छा है, जो समस्या को सुलझाए, जीने की कला सिखाए। वह धर्मगुरु अच्छा है, जो समस्या को सुलझाने वाले धर्म का प्रतिपादन करे, समस्या को सुलझाने में योग दे। ऐसे धर्म और धर्मगुरु की शरण ही कल्याणकारी हो सकती है। ❑

लघुदण्डक का एक विमर्शनीय बोल

प्रोफेसर मुनि महेन्द्र कुमार

लघुदण्डक जैन श्वेताम्बर परंपरा में व्यापक रूप से मान्य एक प्राचीन थोकड़ा है। इसमें सारे बोल प्रायः आगमों के आधार पर निरूपित किए गए हैं, फिर भी यह आवश्यक है कि इन बोलों का आगमिक प्रमाण होना चाहिए। इस संदर्भ में एक बोल जो विमर्शनीय है, वह ध्यान में आया है।

लघुदण्डक के तेरहवें दृष्टिद्वार में भिन्न-भिन्न जीवों में कितनी दृष्टियां प्राप्त होती हैं, उनका निरूपण है। उसके अंतर्गत यह बताया गया है कि नव ग्रैवेयक के देवों में दृष्टियां दो पाती हैं—सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि। यहां सम्यग्मिथ्यादृष्टि का निषेध किया गया है। यह बात आगमों से संगत नहीं है।

जीवाजीवाभिगम में ग्रैवेयक देवों में तीन दृष्टियां बताई गई हैं[1]—'सोहम्मीसाणेसु णं भंते! कप्पेसु देवा किं सम्मद्दिट्ठी? मिच्छादिट्ठी? सम्मामिच्छादिट्ठी? गोयमा! सम्मद्दिठीवि मिच्छादिट्ठीवि सम्मामिच्छादिट्ठीवि। एवं जाव गेवेज्जा।'

इसका अर्थ है—सौधर्मकल्प ईशानकल्प के देव क्या सम्यग्दृष्टि होते हैं? मिथ्यादृष्टि होते हैं? सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं?

गौतम! सम्यग्दृष्टि भी होते हैं, मिथ्यादृष्टि भी होते हैं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि भी होते हैं। इसी प्रकार यावत् ग्रैवेयक तक जानना चाहिए।

जीवाजीवाभिगम की मलयगिरिकृत वृत्ति में भी इसी रूप में इसको व्याख्यायित किया गया है[2]—'सोहम्मी' त्यादि सौधर्मैशानयोर्भदन्त! कल्पयोर्देवाणामिति वाक्यालंकारे किं सम्यग्दृष्टयो मिथ्यादृष्टयः सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यः? भगवानाह—गौतम! सम्यग्दृष्ट्योऽपि मिथ्यादृष्ट्योऽपि सम्यग्मिथ्या-दृष्ट्योऽपि, एवं यावद् ग्रैवेयकदेवाः।'

इस प्रकार जीवाजीवाभिगम के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि नव ग्रैवेयक के देवों में तीनों दृष्टियां पाती हैं।

प्रश्न होता है कि जीवाजीवाभिगम में जब स्पष्ट रूप से ग्रैवेयक देवों में तीन दृष्टियों का निरूपण है, तो फिर लघुदण्डक में केवल दो दृष्टियों का उल्लेख क्यों किया गया है? यह तो स्पष्ट है कि जब आगम में तीन दृष्टियों का निरूपण स्पष्ट रूप से प्राप्त है तो लघुदण्डक का बोल संशोधनीय हो जाता है। अब बात है कि लघुदण्डक में जो उल्लेख है वह किस अपेक्षा से है, इस पर जब विमर्श करते हैं तो उसका समाधान भगवई, 13/14,15,16 तथा 13/37 में प्राप्त हो जाता है। भगवई 13/37 में बताया गया है[3]—'भंते! असुरकुमारों के चौसठ लाख आवासों में से संख्येय विस्तृत असुरकुमारावासों में क्या सम्यक्दृष्टि असुरकुमार उपपन्न होते हैं? क्या मिथ्यादृष्टि असुरकुमार उपपन्न होते हैं?

इस प्रकार जैसे रत्नप्रभा में तीन आलापक कहे गए हैं वैसे ही वक्तव्य हैं। इसी प्रकार असंख्येय–विस्तृत असुरकुमारावासों में तीनों गमक वक्तव्य हैं, इसी प्रकार अनुत्तर विमानों की वक्तव्यता, इतना विशेष है–तीनों आलापकों में मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि वक्तव्य नहीं है, शेष पूर्ववत्।'

इस सूत्र से फलित होता है कि असुरकुमार से लेकर ग्रैवेयक तक देवों में वे ही आलापक वक्तव्य हैं जो भगवई 13/14,15,16 में रत्नप्रभा के संदर्भ में बताए गए हैं। वे तीन आलापक इसी प्रकार है[4]–

- भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय–विस्तृत नरकों में क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिक उपपन्न होते हैं? मिथ्यादृष्टि, नैरयिक उपपन्न होते हैं? सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उपपन्न होते हैं?
- गौतम! सम्यग्दृष्टि नैरयिक भी उपपन्न होते हैं, मिथ्यादृष्टि नैरयिक भी उपपन्न होते हैं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिक उपपन्न नहीं होते।
- भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय–विस्तृत नरकों में क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिक उद्वर्तन करते हैं? पूर्ववत्
- भंते! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के तीस लाख नरकावासों में से संख्येय–विस्तृत नरकों में क्या सम्यग्दृष्टि नैरयिकों का विरह होता है? मिथ्यादृष्टि नैरयिकों का विरह होता है, सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिकों का विरह होता है?
- गौतम! सम्यगदृष्टि नैरयिकों का विरह नहीं होता, मिथ्यादृष्टि नैरयिकों का विरह नहीं होता, सम्यग्मिथ्यादृष्टि नैरयिकों का अविरह अथवा विरह दोनों होते हैं।
- इसी प्रकार असंख्येय–विस्तृत नरकों में तीन गमक वक्तव्य हैं। इसी प्रकार शर्कराप्रभा की वक्तव्यता, इसी प्रकार यावत् तमा की वक्तव्यता।'

ये तीन आलापक जैसे रत्नप्रभा के नैरयिकों के संदर्भ में प्रज्ञप्त हैं, वैसे ही ग्रैवेयक तक के देवों के संदर्भ में भी वक्तव्य हैं।

भगवई 8/14-16 के भाष्य में इन तीन सूत्रों की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया गया है[5]–

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में मरण नहीं होता, इसलिए रत्नप्रभा पृथ्वी में सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते, उद्वर्तन भी नहीं होता।[6]

मध्यकाल में सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान की प्राप्ति हो सकती है, इसलिए रत्नप्रभा पृथ्वी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों से विरहित और अविरहित–दोनों हो सकती हैं।[7]

इस भाष्य से तथा भगवई 13/17 के पाठ से ग्रैवेयक देवों के संबंध में ये तीन बातें स्पष्ट होती हैं–

1. ग्रैवेयक देवों में सम्यग्दृष्टि देव और मिथ्यादृष्टि देव उपपन्न होते हैं, किंतु सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव उपपन्न नहीं होते।
2. ग्रैवेयक देवों में से सम्यग्दृष्टि देव उद्वर्तन करते हैं, मिथ्यादृष्टि देव भी उद्वर्तन करते हैं, किंतु सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव उद्वर्तन नहीं करते।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों की उपपत्ति तथा उद्वर्तन किसी भी दण्डक के जीवों में इसलिए संभव नहीं है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान (तीसरे गुणस्थान) में कोई भी जीव नहीं मरता।[8]

3. ग्रैवेयक देवों में सम्यग्दृष्टि देवों का विरह नहीं होता, मिथ्यादृष्टि देवों का भी विरह नहीं होता, सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों का अविरह अथवा विरह दोनों होते हैं।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि ग्रैवेयक देवों में सम्यग्मिथ्यादृष्टिवाला जीव न उपपन्न होता है और न उसका वहां से उद्वर्तन होता है, किंतु वहां उपपन्न

होने के बाद देव आयुष्य के दौरान सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान की प्राप्ति हो सकती है, इसीलिए ग्रैवेयक देवलोक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों से कभी अविरहित होते हैं, तो कभी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव के अभाव में वे ग्रैवेयक देवलोक सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवों से विरहित हो जाते हैं। जिस समय सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों से ग्रैवेयक देवलोक अविरहित होते हैं, उस समय वहां तीनों प्रकार की दृष्टिवाले देव पाए जाते हैं।

इस प्रकार लघुदण्डक में तेरहवें दृष्टिद्वार में यह संशोधन अपेक्षित है—सात नारकी, दस भवनपति, वानमंतर, ज्यौतिष्क, बारहवें देवलोक तक के देवता तथा नव ग्रैवेयक के देवता, संज्ञी मनुष्य, संज्ञी तिर्यंच-पंचेन्द्रिय में दृष्टि तीन पाती हैं।

लघुदण्डक में अभी जो ग्रैवेयक में केवल दो दृष्टियों का उल्लेख है, वह उपपत्ति और उद्वर्तन न होने के कारण संभवतः बताया गया है, किंतु भगवती सूत्र में उल्लिखित अविरह—काल की ओर ध्यान न देने के कारण ऐसा हुआ हो, यह संभावना है। फिर भी जीवाजीवाभिगम का पाठ तो अपने आप में इतना स्पष्ट है कि संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है।

अपेक्षा है उपर्युक्त समग्र विवेचन की समीक्षा कर लघुदण्डक में अपेक्षित संशोधन किया जाए। ❑

संदर्भ :

1. जीवाजीवाभिगम, तच्चा चउव्विह पडिवत्ती, सू. 1105 उवंगसुत्ताणि, भाग 1, पृ. 468
2. जीवाजीवाभिगम, वृत्ति पत्र 401
3. भगवई (भाष्य), खंड 4, पृष्ठ 124

चोयट्ठीए णं भंते। असुरकुमारावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु असुरकुमारावासेसु किं सम्मदि्दट्ठी असुरकुमारा उववज्जंति? मिच्छदिट्ठी असुरकुमारा उववज्जंति? एवं जहा रयणप्पभाए तिण्णि आलावगा भणिया तहा भाणियव्वा। एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा, एवं जाव गेवे ज्जविमाणे, अणुत्तरविमाणेसु एवं चेव, नवरं-तिसु वि आलावएसु मिच्छादिट्ठी सम्मा-मिच्छदिट्ठी य न भण्णंति, सेसं तं चेव।

4. क. भगवई अंगसुत्ताणि, भाग 2, पृ. 592
   ख. भगवई (भाष्य) खंड 4, पृ. 116, 117

इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु किं सम्म दिट्ठी नेरइया उववज्जंति? मिच्छदिट्ठी नेरइया उववज्जंति? सम्मामिच्छदिट्ठी नेरइया उववज्जंति?

- गोयमा सम्मदिट्ठी वि नेरइया उववज्जंति, मिच्छदिट्ठी वि नेरइया उववज्जंति, नो सम्मामि च्छदिट्ठी नेरइया उववज्जंति।
- इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीए तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडेसु नरएसु किं सम्मदिट्ठी नेरइया उव्वट्टंति?
- एवं चेव।
- इमीसे णं भंते! रयणप्पभाए पुढवीस तीसाए निरयावाससयसहस्सेसु संखेज्जवित्थडा नरगा किं सम्म-दिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया? मिच्छदिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया? सम्मामिच्छदिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया?
- गोयमा! सम्मदिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया, मिच्छदिट्ठीहिं वि नेरइएहिं अविरहिया, सम्मा-मिच्छदिट्ठीहिं नेरइएहिं अविरहिया विरहिया वा।
- एवं असंखेज्जवित्थडेसु वि तिण्णि गमगा भणियव्वा। एवं सक्करप्पभाए वि, एवं जाव तमाए वि।

5. भगवई (भाष्य), खंड 4, पृ. 117
6. भ. वृ. 13/14-17 न सम्ममिच्छो कुणइ कालं इति वचनात् मिश्रदृष्टयो न म्रियन्ते नापि तद्भवप्रत्ययं तेषामवधिज्ञानं स्यात् येन मिश्रदृष्टयः सन्तस्ते उत्पद्येरन्।
7. वही—कादाचित्कत्वेन तेषां विरहसंभवादिति।
8. झीणी चर्चा - ढाल 17 गाथा 1,—
   त्रिण गुणठाणां अमर कहया छै, तेरम बारम तीजो रे।

तेरापंथ शासन का कार्यकारी हस्ताक्षर महासभा

महासभा का इतिहास

लेखक
मुनि सुमेरमल (मंत्रीमुनि) लाडनूं

संपादक
मुनि उदितकुमार

गतांक से आगे....

कानूनी उलझाव : महासभा का सुलझाव

प्राचीन समय में राजा-महाराजा किसी भी सम-सामयिक समस्या, विवाद या बात पर अपना निर्णय दे देते। वह निर्णय ही आदेश होता और वही कानून माना जाता। जब राजा उस बात को निरर्थक समझ लेते तो उस निर्णय को निरस्त भी कर देते। उस समय प्रशासकीय तथा विधायिका व न्यायपालिका की समस्त सत्ता राजा में ही निहित होती थी। उसे कहीं भी चैलेंज नहीं किया जा सकता था।

देश में जब अंग्रेजों की शासन प्रणाली आई तब राजाओं के राज्य में कार्य निष्पादन हेतु एसेंब्ली, लेजिस्लेटिव काउंसिल, विधानसभा, युनाइटेड काउंसिल, धारासभा व इस तरह के अनेक नामों से विधायिका का रूप सामने आया। इनमें उस राजा के राज्य से सदस्य मनोनीत होते थे। मुख्यमंत्री या प्रधानमंत्री समेत पूरा मंत्रिमंडल कार्यरत रहता। इन सबके बावजूद राजा के पास समस्त वीटो पावर रहते। न्यायपालिका के क्षेत्र में भी मजिस्ट्रेट जज आदि की नियुक्ति की जाने लगी थी, किंतु अंतिम निर्णय राजाओं के पास होता था।

इन सब बातों का जिक्र इसलिए जरूरी था कि इन विधायिकाओं में समय-समय पर सदस्यों द्वारा ऐसे प्रस्ताव/बिल पेश कर दिए जाते जो साधु-चर्या व परंपरा के खिलाफ जाते थे। ऐसा विभिन्न विधानसभाओं में अकसर होता रहता था। इन विधानसभा सदस्यों में कोई-न-कोई युग व परिवर्तन के नाम पर तथाकथित प्रगतिवादी बनकर यदा-कदा ऐसे प्रस्ताव/बिल रख दिया करते थे। ऐसे बिल मुख्यतः नाबालिग दीक्षा के संबंध में अधिक आए। वैसे बैगर्स बिल आदि भी प्रस्तुत हुए थे।

नाबालिग दीक्षा को बंद करने संबंधी प्रस्ताव के पीछे मौजूद कारणों की मीमांसा करें तो उनका मंतव्य एकदम गलत भी नहीं बता सकते। जैन समाज के सभी समुदायों व अन्य संप्रदायों में नाबालिग दीक्षा विहित रही है। उनमें तेरापंथ की दीक्षा सुव्यवस्थित होती है। अन्य

समुदायों में दीक्षा की प्रक्रिया में गड़बड़ी होना आम बात थी। वहां फर्जी मां-बाप बना कर उनकी आज्ञा लेकर भी दीक्षा दी जाती थी। असली मां-बाप को जब असलियत का पता लगता तब विरोध भी करते, कोर्ट-कचहरी भी जाते, इससे बुद्धिजीवी व समझदार लोगों पर बुरा प्रभाव पड़ता। वे लोग दीक्षा के विरोधी बन जाते। बहला-फुसला कर दी जाने वाली दीक्षा से वातावरण क्षुब्ध हो उठता, कोई-न-कोई विरोध में प्रस्ताव रख देता।

कहीं-कहीं विरोधी लोगों की शह इसलिए भी रहती थी कि प्रस्ताव पास होने पर तेरापंथ की दीक्षा अवश्य रुक जाएगी। तेरापंथ की प्रगति को रोकने का उन्हें यह एक सशक्त साधन लगता था। जब-जब जहां-जहां मौका मिलता, उपयोग कर लेते। वे चाहते भी थे कि एक जगह कहीं दीक्षा-विरोधी प्रस्ताव पास हो जाए, तो फिर अन्य राज्यों की विधानसभाओं में भी पास करवाने में दिक्कत नहीं होगी।

बाल दीक्षा सबमें होती थी। श्वेताम्बर जैनों के सभी समुदायों में इसका प्रचलन है, किंतु प्रस्ताव का विरोध करने के लिए आगे आते केवल तेरापंथी। कई जगह कहा भी जाता–'आप अकेले ही क्यों विरोध कर रहे हैं? प्रस्ताव पास होने दें, बाद में और समुदायवाले जैसे करें वैसे आप भी कर लेना।' कई बार कार्यकर्ताओं को समझाने में कठिनाई होती। दूसरे समुदाय वालों को विरोध में साथ होने के लिए कहते तो उत्तर मिलता–'आप लोग कर ही रहे हैं, हम सबका समर्थन आपके कार्य में है।' सक्रिय भूमिका तेरापंथ की रहा करती थी। महासभा के कार्यकर्ता स्थानीय लोगों से मिलकर कभी कहीं, कभी कहीं इस बारे में लगे ही रहते थे। उदाहरण के तौर पर कुछ प्रसंग अग्रलिखित हैं।

लोकसभा में बाल संन्यास दीक्षा प्रतिबंधक बिल

लोकसभा में पंजाब के सांसद श्री दीवानचंद्र शर्मा की ओर से 'बाल संन्यास दीक्षा प्रतिबंधक बिल' 20 दिसंबर 1957 को उपस्थित किया जाने वाला था। बिल की धारा के अनुसार 18 वर्ष की उम्र से कम अवस्था में किसी भी बालक को दीक्षा देना अपराध माना गया तथा दीक्षा देने वाले एवं दीक्षा के लिए स्वीकृति देने वाले को कारावास का दंड देने का विधान था।

यह बिल भारत की त्यागप्रधान आध्यात्मिक संस्कृति और संयम साधना पर सीधा कुठाराघात करते हुए स्वेच्छापूर्वक धर्म परिपालन के लिए प्राप्त सहज नागरिक अधिकारों पर प्रतिबंध था। बिल के प्रतिवाद में महासभा की तरफ से स्थान-स्थान से तार व पत्र भिजवाए गए। समाजभूषण छोगमलजी चौपड़ा एवं महासभा के सभापति मदनचंदजी गोठी तथा समाज के अन्य कई कार्यकर्ता दीवानचंद्र शर्मा से दिल्ली में मिले तथा बिल से होनेवाले अहितकर कार्यों की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया। इस अवसर पर बिल के प्रतिवाद के लिए महासभा की ओर से लोकसभा के अध्यक्ष, मंत्री एवं संसद सदस्यों को मेमोरैंडम भी भेजा गया था। अंत में दीवानचंद्रजी शर्मा ने 20 दिसम्बर 1957 को बिल उपस्थित नहीं किया।

सुप्रीम कोर्ट में बाल दीक्षा विरोध में याचिका

सन् 1987 में एडवोकेट श्री अरविंद जैन ने सुप्रीम कोर्ट (उच्चतम न्यायालय) में एक याचिका दायर कर बाल दीक्षा को गैर-कानूनी बताते हुए इस पर प्रतिबंध लगाने का अनुरोध किया।

यह मैटर महासभा के पास आया तब 19 सितंबर 1987 को महासभा की कार्यकारिणी मीटिंग में विचार-विमर्श किया गया और सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव पारित किया गया। प्रस्ताव की भाषा इस प्रकार है–

'दिल्ली सुप्रीम कोर्ट में श्री अरविंद जैन द्वारा बाल दीक्षा आदि को लेकर जो केस दायर किया है उसकी जानकारी प्रधानमंत्री ने सदस्यों को दी।

सर्वसम्मति से यह निर्णय हुआ कि महासभा की ओर से केस का प्रतिवाद किया जाए। उसके

लिए सुप्रीम कोर्ट में उस केस के संबंध में महासभा प्रतिवादी बने और उसके विरोध में उचित कानूनी सलाह से कार्यवाही की जाए। श्री जैन द्वारा दायर किए गए केस को खारिंज कराया जाए। इसके संबंध में अन्य जैन समाजों से भी संपर्क कर उनको भी साथ में जोड़ने की कोशिश की जाए।'

इस संदर्भ में 11 व्यक्तियों की एक क़मेटी का गठन किया गया। उस कमेटी को इस केस के संबंध में सारी कार्यवाही करने का भार दिया गया।'

श्री अरविंद जैन (याचिकाकर्ता नं. 455096) की याचिका पर उनकी रिट पिटिशन (सी) नं. 497/87 पर 5 अगस्त 1993 को सुप्रीम कोर्ट की पीठ में आई। पीठ के तीन सदस्य थे–

1. न्यायमूर्ति कुलदीपसिंह,
2. न्यायमूर्ति एम. एम. पुंछी,
3. न्यायमूर्ति एस. पी. भरुचा।

सुप्रीम कोर्ट के समक्ष प्रतिवाद की युक्तियुक्त सांगोपांग प्रस्तुति के लिए भारत सरकार में विधिमंत्री रहे डॉ. अशोक सेन, पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री रहे डॉ. सिद्धार्थ शंकर राय, एवं दिल्ली के वरिष्ठतम विधिवेत्ताओं से परामर्श किया गया। उन्हें जैन आगमों के साथ-साथ अन्य धर्मों के प्राचीन परंपरा से विहित बाल दीक्षा प्रसंगों एवं उल्लेखों के प्रमाण उपलब्ध कराए गए। इन्हीं विधि विशेषज्ञों को कोर्ट के समक्ष प्रतिवाद प्रस्तुति के लिए उपस्थित होना था, पर सुनवाई शुरू होते ही याचिकाकर्ता श्री अरविंद जैन ने रिट पिटिशन उठा ली जिससे सुप्रीम कोर्ट में केस खारिज हो गया–ऑर्डर की भाषा इस प्रकार है–

Learned Counsel for the petitioner states that this writ petition is dismissed as withdrawn. We dismiss the petition as withdrawn. इस पूरे केस में महासभा ने प्रतिवादी बनकर पूरे केस को संभाला।

राजस्थान विधानसभा में भिक्षावृत्ति निवारण विधेयक

राजस्थान के गृहमंत्री श्री रामकिशोर व्यास ने राजस्थान विधानसभा में सन् 1957 में 'राजस्थान भिक्षावृत्ति निवारण विधेयक' रखने की घोषणा की। इसे सन् 1958 को सिलेक्ट कमेटी के सुपुर्द कर दिया। सन् 1960 में विधानसभा में विचार होनेवाला था। इसकी सूचना प्राप्त होते ही राजस्थान के मुख्यमंत्री, विधानसभा अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, गृहमंत्री, कानून मंत्री आदि को महासभा की तरफ से तार वगैरह दिए गए। राजस्थान विधानसभा के विधायक मनोहरजी कोठारी, महासभा के सभापति मदनचंदजी गोठी आदि जयपुर गए और इस संबंध में समुचित कार्यवाही की।

राजस्थान एसेंब्ली के मंत्रियों एवं सदस्यों को मेमोरैंडम देकर इस बिल से क्या-क्या अड़चनें पैदा होंगी–उस पर ध्यान आकृष्ट कराया गया। 19 जनवरी 61 को महासभा के अध्यक्ष के नेतृत्व में एक डेपुटेशन ने सिलेक्ट कमेटी के मेंबरों से जयपुर में मिलकर सारी बातों से उन्हें अवगत कराया। सिलेक्ट कमेटी के सदस्यों ने इस पर गहराई से चिंतन करने का आश्वासन दिया। आखिर व्यासजी ने विधानसभा में बिल न रखने का निर्णय ले लिया।

लोकसभा में साधु-संन्यासी रजिस्ट्रेशन बिल

विधानसभा, लोकसभा में कई तरह के प्रस्ताव आते रहे हैं। समाज सुधार, रूढ़ि उन्मूलन को लेकर प्रस्ताव सांसदों एवं विधानसभा सदस्यों द्वारा रखे जाते रहे हैं। स्वतंत्रता के पहले दशक में ऐसे प्रस्ताव अधिक आए थे। उस समय के सदस्यों में जागरूकता अधिक थी। देश के पुनर्निर्माण के प्रति चिंता थी। उस समय में बुद्धिजीवी देश में बढ़ते भिखारियों से चिंतित थे। साधु के कपड़े पहने और मांगना शुरू कर दिया। कौन असली, कौन पाखंडी, कौन साधक, कौन पेट-भरा? पहचान कर पाना कठिन हो गया था।

सांसद श्री राधारमण ने 'साधु-संन्यासी रजिस्ट्रेशन बिल' के नाम से प्रारूप बनाया। उनका मानना था—इसके माध्यम से साधु अपने-अपने समुदाय, पंथ, अखाड़ा, आश्रम से जुड़ जाएंगे, फिर कोई अपराध करेगा तो उस समुदाय तक कार्यवाही की जा सकती है।

महासभा का प्रयास

महासभा के कार्यकर्ताओं को यह बिल शुद्ध साधनारत साधुओं के जीवन में सीधा हस्तक्षेप लगा। कलक्टर, तहसीलदार रजिस्ट्रेशन करे तो मान्य हो, उसने अगर अमान्य कर दिया तो उसे साधु नहीं माना जा सकता। सभापति, समाजभूषण छोगमलजी चौपड़ा, मोहनलालजी कठोतिया, लाला गिरधारीलालजी, लाला मंगतरायजी आदि सज्जनों ने प्रयत्न किया, तेरापंथ की गतिविधि समझाई। कई मंत्रियों एवं अधिकारियों से रू-बरू मिले। महासभा ने कई विरोध पत्र लिखे।

22 अगस्त 1957 को जब यह विधेयक उपस्थित किया गया तो लोकसभा में इतना प्रबल विरोध हुआ कि प्रस्तुतकर्ता राधारमणजी ने विधेयक को वापस ले लिया। इसी तरह युनाइटेड प्रोविंस (वर्तमान यू.पी.) की लेजिस्लेटिव काउंसिल, काउंसिल ऑफ स्टेट (दिल्ली), बीकानेर एसेंब्ली, जोधपुर की रिजेंसी काउंसिल, बड़ौदा में लेजिस्लेटिव एसेंब्ली (धारा सभा), श्री मेवाड़ सेन्ट्रल एडवाइजरी बोर्ड, मध्य भारत धारासभा आदि में विभिन्न व्यक्तियों द्वारा बाल दीक्षा बिल प्रस्तुत किए गए, पर कहीं पर भी प्रतिबंध नहीं लग सका।

संथारा विवाद में महासभा की भूमिका

अगस्त 1990 में पश्चिम बंगाल स्थित मु. मोथा-बाड़ी, जिला मालदा में लाडनूं की एक बहन श्री हाथीमल मालचंद बोथरा की माजी ने संथारा का पचखाण किया। संथारा के कुछ दिन बाद ग्राम के कुछ व्यक्तियों ने इसे आत्महत्या करने की कोशिश का केस बता कर पुलिस में बीडीओ के यहां शिकायत कर दी। महासभा में इसकी जब खबर मिली तो तुरंत एक पिटिशन बीडीओ के यहां व ऑफिसर इंचार्ज पुलिस स्टेशन के नाम भेजी गई व उनके संबंधियों से कहा गया कि इसकी जो प्रतिक्रया हो एवं इसकी जो प्रगति हो उसकी जानकारी बराबर हमें दें ताकि और भी जो आवश्यक कार्यवाही हो वह यहां की जा सके। मामला कुछ राजनीतिक रंग लेने से जिला मजिस्ट्रेट के पास पहुंच गया और जिला मजिस्ट्रेट मालदा ने इस सुसाइड केस की आशंका पर वारंट जारी करके बहन को मालदा लाने का आदेश दे दिया और वहां नर्सिंग-होम में रख दिया। वहां पर बहन ने अपना संथारा यथावत् जारी रखा।

इसी बीच कलकत्ता में इसकी खबर प्राप्त होते ही विधिवेत्ताओं से व कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री बाबूलालजी जैन से विचार-विमर्श किया गया। उस समय दिनांक 14 अगस्त, 1990 को पश्चिम बंगाल बंद था तथा 15 अगस्त को छुट्टी पड़ जाने से जल्दी से उचित न्यायिक कार्यवाही उच्च न्यायालय में पूर्ण रूप से सफल न होने की आशंका से न्यायिक कार्यवाही नहीं करके पश्चिम बंगाल सरकार के मुख्य सचिव श्री टी. सी. दत्त व पश्चिम बंगाल के पुलिस महानिदेशक से एक शिष्टमंडल के रूप में भेंट की गई व उनके पास विधिवत् व युक्तिसंगत एक पिटिशन फाइल की गई। श्री टी. सी. दत्त से एक शिष्टमंडल के रूप में महासभा के खेमचंदजी सेठिया, जंवरीमलजी बैंगानी, बच्छराजजी सेठिया, तिलोकचंदजी डागा व भंवरलालजी बेगवानी मिले और सबने मुंबई उच्च न्यायालय के एक पूर्व-न्यायाधीश द्वारा लिखी गई पुस्तक 'संलेखना इज नॉट सुसाइड' के माध्यम से संथारे के बारे में जैन समाज की धार्मिक मान्यताएं व इसका जैनधर्म में महत्त्व समझाया। श्री टी. सी. दत्त व पुलिस महानिदेशक से दो बार इस संबंध में मुलाकात की गई और उन्होंने बंद के दरमियान ही जिला मजिस्ट्रेट मालदा से संथारे वाली बहन को मुक्त करने

के मौखिक आदेश दिलवाए। बाद में बहन मालदा से सिलीगुड़ी चली गई, वहां उनका संथारा सानंद संपन्न हुआ। इस संबंध में समाजभूषण श्रीचंदजी रामपुरिया का बहुत योगदान प्राप्त हुआ और उनके ही प्रयास से वह पुस्तक 'संलेखना इज नॉट सुसाइड' प्राप्त हुई।

हमारे तेरापंथ धर्मसंघ के सामने विभिन्न कानूनी स्थितियां आती रहीं। कभी कहीं विरोधी साहित्य प्रकाशन के संदर्भ में न्यायालय में गए तो कभी किसी ने कोर्ट में केस किया तो रक्षात्मक तौर पर सामने आए। तेरापंथ की नीति प्रारंभ से ही सदैव शांति एवं सौहार्दपूर्ण रही है। विधायिका, न्यायपालिका तथा प्रशासनिक स्तर पर बाल दीक्षा, भिक्षावृत्ति एवं अन्य संदर्भों में कोई भी विधेयक/प्रस्ताव/आदेश आए उन सबको निरस्त एवं निष्प्रभ करने के लिए महासभा के पदाधिकारियों और कार्यकर्ताओं ने योजनाबद्ध एवं सक्रिय प्रयास किए, यात्राएं भी बहुत कीं। इसमें उन्हें काफी सफलता भी मिली। ❐

क्रमशः...

सूचना

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

तेरापंथी सभा प्रतिनिधि सम्मेलन

दिनांक 10 से 12 अगस्त 2013, लाडनूं

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा के तत्त्वावधान में आचार्यश्री महाश्रमणजी के सान्निध्य एवं मातृहृदया साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी के दिशा निर्देशन में तेरापंथी सभा प्रतिनिधि सम्मेलन 2013 का त्रिदिवसीय आयोजन दिनांक 10, 11 व 12 अगस्त, 2013 को जैन विश्व भारती, लाडनूं में आयोजित किया जा रहा है।

तेरापंथी सभाओं से चार अधिकृत प्रतिनिधि भेजने हेतु सादर निवेदन है। सभा के वरिष्ठ पदाधिकारियों की उपस्थिति सादर प्रार्थित है। इस सम्मेलन में संघीय व सामाजिक गतिविधियों के संबंध में विशद चर्चाएं होंगी।

उक्त अवसर पर महासभा से एफिलियेटेड तेरापंथी सभाओं में से निर्धारित अर्हताओं के आधार पर एक श्रेष्ठ सभा एवं दो विशिष्ट सभाओं का चयन भी किया जाएगा। सम्मेलन को सार्थक बनाने हेतु आपके सुझाव सादर आमंत्रित हैं। अधिक जानकारी हेतु महासभा प्रधान कार्यालय, कोलकाता से 033-22357956/22343598 तथा 09831034632 नंबरों पर संपर्क किया जा सकता है।

विनोद कुमार चोरड़िया
महामंत्री

विनोद बैद
संयोजक

हीरालाल मालू
अध्यक्ष

बिनोदकुमार चोरड़िया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता–1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेपित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

किसी की सेवा कर उसको गिनाना
सेवा के महत्त्व व फल को कम करना।

—आचार्यश्री महाश्रमण

With best compliments from :

HIRALAL MALOO
HEMANT MALOO
(SUJANGARH)

Maloo Constructions

A-204, IInd Floor, 25/26, Brigade Majestic
Ist Main Road, Gandhinagar, **BANGALORE** 560009
Phone : Office : 22264530, 22265737, Res. : 23403233, 23402756
Mobile : 9844027560 ◆ e-mail : hiralal.maloo@gmail.com

जैन भारती, जून, 2013 ■ प्रेषण दिनांक 28 मई, 2013
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन
बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन
बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन
बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779

नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।